3387

प्रेमगीत

कुमार कृष्णराजदान

सीमांत प्रकाशन

९२२, कूचा रूहेला खाँ, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२

अख़्तर कृष्णराज़दान

© अवतार कृष्ण राज़दान

मूल्य : १३·००
प्रकाशक : नरेन्द्र नाथ 'सोज',
संचालक,
सीमान्त प्रकाशन,
९२२, कूचा रूहेला खां,
दरियागंज, नई दिल्ली-११०००
संस्करण : प्रथम; १९८०
मुद्रक : नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस,
बलवीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२

SOGHAT : Short Stories by Avtar Krishan Rajdan
Rs. 13·00

प्राक्कथन

□

सन् १६६८ ई० ! हां, इसी वर्ष जब मेरी पहली हिन्दी कहानी 'जम्मू-कश्मीर ललित-कला, संस्कृति व साहित्य अकादमी' द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक 'शीराज़ा' (हिन्दी) में आयी तो मैंने महसूस किया कि साहित्य की यही एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से अपने अनुभूत सत्य तीव्रता और रोचकता से प्रोजेक्ट किए जा सकते हैं और आज जब मैं इस दस-ग्यारह वर्षीय कालावधि में लिखी जाने वाली अपनी कहानियाँ 'सौग़ात' शीर्षक से एक कहानी-संकलन के रूप में आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ तो मुझे बहुत खुशी हो रही है। वैसे तो, मेरा काफी पहले से ही प्रस्तुत संकलन को प्रकाशित कराने का विचार था किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण ऐसा न कर पाया। और सबसे बड़ी बात तो यह कि मैं बाल्य-काल से ही एक अपाहिज का जीवन व्यतीत करता हूँ। मेरे दिन बेजान टांगों की बदौलत घर की चारदीवारी में ही व्यतीत होते हैं और इस तरह से मेरी जो दुनिया है, वह सीमित है। कभी-कभी मैं इसमें घुटन महसूस करता हूँ और जी चाहता है कि इसी घुटन में मर जाऊँ। किन्तु मरना भी किसी के बस में नहीं। इसके लिए भी संघर्ष करना ज़रूरी है। शायद इसी संघर्ष-भावना से मैंने अपनी सीमित दुनियां में अपना एक अलग स्थान बनाकर इसके लिए लेखन-मार्ग को ही अपना लिया है और जितना मुझसे हो सकता है, मैं हिन्दी-साहित्य की सेवा करता हूँ।

यों तो मैंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा है किन्तु कहानी अब मेरी ज़िन्दगी बन गयी है। कारण यह है कि कहानी-लेखन का आधार तो मैं रोज़मर्रा की ज़िन्दगी मानता हूँ—अपनी ज़िन्दगी, अपने आस-पास के लोगों की ज़िन्दगी या यूँ समझिए कि अपने या अपने आस-पास रहने वालों की असहायता मुझे एकदम पकड़ती है और मैं इसको कहानी के माध्यम से अभिव्यक्ति देने के लिए विवश सा हो जाता हूँ। इस तरह से ज़िन्दगी मुझे कहानी देती है और मैं चाहता हूं कि मेरी इन कहानियों से किसी को नया जीवन प्रदान हो। किन्तु यहां मैं आपसे कहना चाहूँगा कि कहानी के लिए मैं कृत्रिम परिवेश का निर्माण नहीं करता बल्कि इसको अपने परिवेश के सांचे में डालने की कोशिश करता हूँ जो रचनात्मक हो। इससे मेरी कहानियों को सामाजिक स्वरूप मिलता है। एक वाक्य में कह दूं कि मैं अपनी कहानियों में व्यक्ति के सामूहिक अस्तित्व की विकृतियों, विड़म्बनाओं और चुनौतियों का चित्रण करता हूँ जिसकी अन्तिम परिणति समाज के भीतर कार्यरत शक्तियों के संघर्ष की झांकी है।

'सौगात' मेरी लिखी गयी बारह कहानियों का संकलन है। इन सभी में मैंने यथा संभव अपने आस-पास से कथा और पात्र चुने हैं। यहां तक कि मैंने अपने परिवेश में जो कुछ देखा और सुना, उसको प्रस्तुत कहानियों में उतारने की कोशिश की। 'कीमती चीज़' 'पराजय' 'बरसात' और 'खोयी चीज़-मधुर एहसास' शीर्षक की ऐसी कहानियां हैं जो मात्र प्रसंग न बनकर संपूर्ण अनुभव की उद्भावना करती हैं। इनमें आदमी विद्रोह, संघर्ष और समर्पण करता है। किन्तु इतना सब यदि हो तो उसको अपनी निराशाओं से भयभीत नहीं होना चाहिए। 'मृत्यु अभी दूर है' इसका साक्षी है। हां, एक बात और कहना चाहूँगा कि प्रस्तुत संकलन की कहानियों में मैंने स्त्री पात्रों के प्रस्तुतिकरण में अधिक सक्रिय, संघर्षशीलता और पुरुष की गुलामी से जागरूकता दिखाने का प्रयास किया है और यही कारण है कि 'पैसा, पत्नी और प्यार' 'चंचल लहर : मुक्त धारा' 'चुनौती' तथा 'सच्चा-झूठा' जैसी कहानी-रचनाओं ने मेरी कलम से जन्म लिया है।

प्रस्तुत कहानी-संकलन की अधिकांश कहानियां कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। कुछ कहानियां रेडियो कश्मीर (श्रीनगर) से प्रसारित हुई हैं और इनमें से कुछ अभी अप्रकाशित हैं।

अन्त में, मैं उन सभी साहित्य-मित्रों का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे प्रस्तुत कहानी-संकलन का प्रकाशन करने लिए मेरा उत्साह बढ़ाया और मेरी इस सौग़ात को पाठकों के सामने लाने का सुअवसर प्रदान किया।

—अवतारकृष्ण राजदान
८३, पुरुषयार-हब्बाकदल
श्रीनगर (काश्मीर)

कथा-क्रम

कीमती चीज़	९
मृत्यु अभी दूर है	१५
चुनौती	२१
पैसा, पत्नी और प्यार	२९
चंचल लहर : मुक्त धारा	४२
विश्वास	५०
बरसात	५६
सच्चा-झूठा	६९
दलबदल	७९
खोयी चीज़ : मधुर एहसास	८७
सौग़ात	९४
पराजय	१०१

कीमती चीज़

□

वह तो प्रायः प्रतिदिन अपने कमरे की खिड़की के बाहर देखता। वहां से एक काली-पथरीली सड़क साफ दिखाई देती थी, जिसपर बारह घंटे लोगों का आना-जाना होता। वह उन्हें बड़ी दिलचस्पी से देखता, खासकर उनकी टांगों की हरकत को देखकर वह मचल जाता। दूर से देखने पर वह किसी के चलने का अंदाज़ बता सकता। हर आदमी की अलग-अलग चाल होती है किसी की लयभरी और किसी की लड़खड़ाती। कोई अपनी चाल में संयम दिखाता, कोई बेचैनी और बेढ़ंगापन। वह यह सब बिना किसी उकताहट के देखता, जैसे कोई नाटक देखता हो। कभी-कभी वह सोचता 'यह लोग मेरी ओर क्यों नहीं देखते जबकि मुझे इन्हें देखने में दिलचस्पी है। सब अपने-अपने खयालों में डुबे हुए हैं।' यदि कोई उसकी ओर देखता भी, तो सरसरी नज़र से ही। इससे वह अकेलापन महसूस करता। फिर भी वह प्रतिदिन प्रातः से सांझ तक खिड़की के बाहर देखता रहता क्योंकि इससे उसका समय आसानी से कट जाता।

एक दिन उसने इन लोगों में से एक को बिलकुल अपनी खिड़की के करीब खड़ा पाया। वह सफेद शलवार तथा नीला कुर्ता पहने थी। रेशमी दुपट्टे का आंचल उसके चेहरे पर ऐसे पड़ा हुआ था, जैसे चन्द्रमा के आगे छोटी-सी बदली। बालों की लटें मुंह पर बल खा रही थीं। उम्र से सत्रह-अठारह वर्ष की लग रही थी। उसने धीरे-धीरे अपना बच्चों का सा मुंह

उठाया और उसकी तरफ एकटक देखने लगी । फिर वह मुसकुरायी और दायें हाथ से उसको कुछ इशारा किया। उसको लड़की की यह हरकत अजीब-सी लगी। उसने सोचा कि आखिर कैसी लड़की है यह ? क्या यह सचमुच मुझे देख रही है या किसी की प्रतीक्षा कर रही है ? नहीं तो, यह यों ही सामने देख रही है। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं। इन आंखों से वह आखिर क्या देख रही है ? हाय, वह तो मुझे देख रही है। हाय, मुझे ही !

उसने अपना मुख मोड़कर कमरे की तरफ देखा। उसने सोचा कि लड़की अब वहां से हट जायेगी किन्तु ज्योंही उसने सड़क की तरफ देखा, उसको उसी तरह अपने स्थान पर खड़ा पाया। अबकी बार वह किसी दूसरी लड़की के साथ बातें कर रही थी और उसको आंखों ही आंखों में उसे दिखा रही थी। यह देखकर उसके शरीर में सिहरन-सी उत्पन्न हुई। उसने आंखें बन्द करलीं और खिड़की में से हट जाना चाहा, किन्तु हट न सका।

कुछ देर बाद लड़की लोगों की भीड़ में खो गई। उसकी चाल में मस्तीपूर्ण संयम था, जो उसके चेहरे से भी झलकता था।

आज जिन्दगी में पहली बार उसके साथ यह घटना घटी थी, इसलिए वह बहुत खुश था। उसने सोचा कि अब इस खिड़की के बाहर देखने से अच्छी तरह समय कट जाएगा। यदि निकट से कोई साथी न बन सका, तो दूर से ही सही। दूर के ढोल सुहावने होते हैं।' रात को वह सो गया, तो कई सुन्दर सपने देखे। एक सपने में वह सड़क पर लड़की के साथ कदम से कदम मिलाता हुआ चलाता है और सड़क खत्म होने में ही नहीं आ रही है।

अगले दिन लड़की फिर उसी सड़क से गुजरी। उसने खिड़की की तरफ देखा, जहां से वह देख रहा था। कल की तरह वह घबराया। उसने बाहर ऐसे देखा, जैसे यों ही देख रहा हो। उसने चाहा कि वह वहां से चली जाये। वह क्यों मुझे नाहक परेशान करती है ? क्या यह संभव है कि वह भी मेरी ही तरह किसी मधुर कल्पना में खोई हुई है ? वह इन्ही बातों पर काफी देर तक सोचता रहा। उसके अन्दर हलचल-सी मच गयी। दिल की धड़कन तेज होने लगी। माथे पर पसीने की छोटी-छोटी बूंदें

झलकने लगीं। उसने धीमी-धीमी सांसों में उलझी हुई आवाज़ में अपने-आपसे कहा—'क्या यह सपना है या वास्तविकता ? लगता है कि यह आरजू के कई वर्षों की चाहत है।'

लड़की के साथ उसकी ऐसी मुलाकात अब लगभग प्रतिदिन होने लगी थी। यद्यपि उसके मां-बाप को भी इस बात का पता चल गया था, फिर भी उन्होंने उसको खिड़की के बाहर देखने से न रोका। वे जानते थे कि इससे लड़की का कुछ बिगड़ नहीं जायेगा। दरअसल यह बात सच थी। वह रोज लड़की को खिड़की के बाहर देखता। लड़की छुप-छुपकर उसके साथ नज़रें मिलाती, इशारों में बाहर आने को कहती, फिर मुस्कराती और जब तक वह आंखों से ओझल न हो जाती, उसकी ओर देखती रहती। उसकी आंखों में कभी उदासी होती, कभी खुशी। मगर उसको इससे कोई मतलब नहीं था। उसको सिर्फ लड़की को देखने से ही तसल्ली मिल जाती। उसके लिए वह रोज खिड़की पर बैठा प्रतीक्षा करता था।

इसी प्रकार दिन बीत गये। अब वह रोज इसलिए लड़की की प्रतीक्षा करता कि आज कोई-न-कोई बात जरूर होगी। क्या आज वह कोई नया कदम उठायेगी ? फिर वह अपने आपसे पूछता कि कौन-सा नया कदम उठायेगी वह बेचारी ? कदम तो उसको उठाना चाहिए, लड़की को नहीं। कदम के बारे में सोचकर ही उसने एक आह भरी। एकाएक उसकी नज़र अपनी टांगों पर पड़ी। टेढ़ी-मेढ़ी टांगें थीं उसकी। चलना तो एक तरफ, ये उसका भार भी उठा नहीं सकती थीं। टांगों की बदौलत ही उसके दिन घर की चार-दीवारी में बीत जाते। उसकी दशा उस पंखहीन पक्षी की तरह थी, जिसको पिंजरे के कोने में ही सुख प्राप्त होता है।

वह जन्म से ही घर की चार-दीवारी में घिरा हुआ था। मां-बाप ने कई हजार रुपये उसके इलाज पर खर्च किये, किन्तु सब बेसूद। उसके स्वस्थ होने की कोई आशा नहीं लगती थी। उसकी जिन्दगी घर की चार-दीवारी में ही गुजरती थी। हां, महीने में दो-एक बार बाहर बाजार तक जाता था, पहियों वाली कुर्सी पर। रोज बाहर जाने का साहस नहीं करता। अपनी हालत को देखकर उसकी आंखें कभी-कभी भर

आतीं। उसकी दुनिया सीमित थी और उसमें वह घुटन-सी महसूस करता। कभी-कभी दिल चाहता कि उसी घुटन में मर वह जाए क्योंकि घुटे हुए अरमानों के कारण उसका जीना बोझिल-सा बन गया था।

'काश, मैं भी कदम उठा सकता !' उसने मन में सोचा। कदम का खयाल आते ही उसको वह लड़की भी याद आयी। कैसी छमाछम करती हुई चलती है ? उसकी चाल भी निराली है। लम्बे-लम्बे डग भरती हुई अदा से वह इस सड़क को पार करती है। सड़क का हुजूम उसके पीछे-पीछे चला जाता है और मैं बुत बना यह सब देखता रह जाता हूँ, सिर्फ इसलिए कि मेरी टांगें चलने योग्य नहीं। मैं अपाहिज ही सही, किन्तु मेरी सोचें भी ठहरी हुई हैं। क्या पता मेरी मंज़िल बहुत करीब हो, बिलकुल करीब। और यदि मेरा भाग्य इसी लड़की के मिलाप के साथ लिखा हो, तो इसमें मेरा क्या दोष ? काश, ऐसा भी मुमकिन होता। किन्तु इसके लिए पहल भी मुझे ही करनी चाहिए। कुछ भी हो, मुझे उससे मिलना चाहिए, ज़रूर मिलना चाहिए। इस मिलन के लिए आज मेरा बोझ मेरी टांगों को उठाना ही होगा।

उसने अपना सिर ऊंचा किया और बड़ी मुश्किल से भुजाओं के सहारे अपना बोझ टांगों पर डाला। फिर इन्हें हरकत में लाने की कोशिश की।। वह उठना चाहता था, अपनी टांगों पर, किन्तु इनमें वह जान कहां थी कि उसका भार उठा सकें। फिर भी वह नहीं माना क्योंकि आज उसने कुछ-न-कुछ कर गुज़रने की ठान ली थी। उसने अपने दायें हाथ से खिड़की को पकड़ा और अपनी पूरी ताकत लगाकर ज्यों ही वह ऊपर उठने लगा था कि तड़ाख···वह फर्श पर गिर पड़ा। उसके शरीर में थरथराहट-सी पैदा हो गयी। उसको अपने इस पागलपन पर हंसी भी आयी और रोना भी। वह सभी की ओर देखता रहा—एक अपराधी की तरह, क्योंकि उसने ऊपर उठने की असफल कोशिश की थी। उसके माथे पर चोट भी लगी थी। चोट मामूली थी, किन्तु उसने सोचा कि यह चोट नहीं, भूकंप का एक शक्तिशाली झटका था, जिससे उसके खयालों का भव्य भवन तहस-नहस हो गया है। माथे पर लगी यह चोट ठीक हो सकती थी, किन्तु खयालों का यह मनभावन महल, जिसकी हर

एक दीवार अरमानों से सजी थी, क्या फिर बन सकता था ? मां-बाप की जब उसके माथे पर नज़र पड़ी तो वे बहुत घबराये। उन्होंने उसको अस्पताल में ले जाना ही मुनासिब समझा।

उसको वे पहियों वाली कुर्सी पर बिठाकर अस्पताल ले गये। रास्ते में वह किसी की ओर नहीं देखता था। उसकी नज़रे सीधी थीं, वह कुछ सोच रहा था कि अचानक दूर से उसको वह लड़की आती हुई दिखाई दी। वही मस्तानापन वही मतवाले नयन। उसने उसकी तरफ सहमी आंखों से देखा। दिल की धड़कन तेज़ होने लगी। गाल सुर्ख होने लगे। उसने सिर झुकाया और टांगों पर पड़े हुए फटे-पुराने शाल को ठीक कर लिया। लड़की हौले-हौले सरगोशियों में दूसरी लड़कियों के साथ बातें करती हुई उसकी ओर कदम बढ़ा रही थी। वह उसके निकट पहुँचने ही वाली थी।

उसने अपनी टांगों पर पड़े शाल को फिर से ठीक किया और उन्हें इसमें पूरी तरह छिपाने की कोशिश की। उसको इस बात का डर था कि कहीं लड़की इनको देख न ले। एक बार, दो बार, तीन बार उसने ऐसा ही किया। यह देखकर उसके बाप की समझ में कुछ नहीं आया। उन्होंने उसको यह कहकर डांटा कि 'क्यों बार-बार शाल को इस प्रकार सहेजने में लगे हो। दस साल पुराना यह शाल···गिरने दो, गिरता है तो··· और फिर यह बहुत कीमती भी तो नहीं है।'

हर आदमी की नज़र में हर चीज़ की कीमत अलग होती है। वह मन-ही-मन बुदबुदाया—यह पुराना शाल मेरे लिए कितना कीमती है, यह इन लोगों को क्या मालूम ? जिस राज़ को छुपाने को ताकत सिर्फ इस शाल में है, मेरे लिए यह राज़ कितना कीमती है। और इसीलिए कितना मूल्यवान है यह शाल···।

इन बेजान टांगों के अपंग संसार में कुछ क्षणों के लिए जो मधुरता आ जाती है, वह खत्म हो जाएगी। फिर वह कभी खिड़की के सामने खड़ी नहीं होगी···कभी नहीं।

उसने शाल को टांगों के चारों ओर अच्छी तरह लपेट लिया। अस्पताल की दीवार पर बना लाल क्रास दूर से ही दिखाई देने लगा था।

चारों ओर से घूमती हुई उसकी निगाहें एक बार फिर जाकर लड़की पर स्थिर हो गईं। वह जानना चाहता था कि आखिर लड़की कहाँ जाती है? इधर या उधर, दायें या बायें! अचानक लड़की बड़ी तेज़ी से चलने लगी और अपनी दूसरी सहेलियों से कटकर चुपचाप उसके सामने नज़रें झुकाये बुत की तरह खड़ी हो गयी।

उसी क्षण उसकी आँखों से उबलते हुए आंसू फूट पड़े। यह आंसू नहीं, जीवित शब्द थे—बेबसी के और लड़की यह सब सिर झुकाये देख रही थी। उससे आगे चला ही नहीं जाता था, मानो वह कदम उठाना ही भूल गई हो। उस समय ऐसा लगता था कि लड़की अपाहिज है और वह सड़क पर चहल कदमी कर रहा है।

●

मृत्यु अभी दूर है

□

भयंकर अंधेरा! जाड़े की यह न खत्म होने वाली रात! चुप्पी! कोई शोरगुल नहीं। मैंने धीरे से खिड़की खोली और बाहर की ओर झांककर देखा। मकानों की छतें जमे हुए बर्फ से घिरी हुई हैं। चारों तरफ मानो संगमरमर की लम्बीं चादरें दूर-दूर तक फैली हुई हैं। सफेद! और मेरे सामने यह बिस्तर है, जिस पर सर्फ से धुली हुई सफेद कबर-चादर है, जो मानो मेरे ही इन्तज़ार में है कि कब मैं इसमें सो जाऊं।

मगर मुझे नींद नहीं आ रही है। वह तो कुछ समय के लिए मेरी आंखों से गायब हो गयी है। उफ! कितने बज गये? साढ़े तीन! ये जाड़े की रातें कितनी लम्बी होती हैं। इन लम्बी-लम्बी रातों में जब सो जाता हूं, तो सारा बदन लेटे-लेटे थक जाता है और जब जागता हूं तो मन-मस्तिष्क कई प्रकार के विचित्र ख़यालों से घिर जाता। मगर नहीं! मैं तो जाड़े की इन लम्बीं-लम्बीं रातों को अपनी जीविका कमाने का एक बड़ा साधन मानता हूं, क्योंकि इन्हीं लम्बी रातों में मैंने साहित्य की सराहनीय सेवा की है—गत बीस वर्षों से यों तो जब कभी मैं लिखने बैठता हूं, समझ में नहीं आता कि मेरे सीने पर किस प्रकार एक भारी बोझ धीरे-धीरे हल्का-सा हो जाता। विचारों के कटे हुए धागे एक-दूसरे से कैसे मिल जाते, उनका अपने-आप तालमेल किस प्रकार हो जाता तथा

तथा बिखरी हुई भावनाएं एकत्र होकर कैसे आकार ग्रहण कर लेतीं और मैं लेख, कहानियां, उपन्यास, आदि लिखने बैठता हूं, लिखता नहीं हूं, लिखता था ! इसीलिए तो मेरे यार-दोस्त, सगे-संबंधी, अपने-पराये मुझे 'लेखक-जिन्न' कहकर पुकारते थे। उस समय उनके मुंह से यह शब्द सुनकर मैं बहुत खुश हो जाता, क्योंकि इससे मेरे प्रेरणा-स्रोत का बहाव बढ़ जाता। मगर आज—आज तो मुझमें वह बात नहीं। आज मुझे कुछ लिखना ही नहीं आता। मेरे विचारों के बारीक धागे मानो एक-दूसरे से उलझ गये हैं। प्रेरणा-स्रोत एकदम सूख गया है और मुझे···मुझे तो अपने-आप में एक प्रकार का खोखलापन-सा महसूस हो रहा है। कितनी बार सोचा, मैं कुछ लिखूं ! मगर लिखूं क्या ? दिमाग़ में कुछ नहीं आ रहा है। मगर नहीं, ऐसा मत कहो ! अब भी मेरे सीने पर वही भारी बोझ है। वह अभी उतरा नहीं। इसको तो उतरवाना है। धीरे-धीरे उतर जाएगा ! जल्दी भी कौन-सी ! फिलहाल मैं यह कलम रख दूं। इस समय मुझे बिजली की इस रोशनी में अंधेरे के सिवाय कुछ नहीं दीखता। मार्घशीर्ष की यह लम्बी रात, उफ ! कब सुबह हो और मैं इस काली स्याह रात से आज़ाद हो जाऊं ! किन्तु अभी सुबह होने को चार घंटे रह गए हैं। तब तक मैं क्या करूं ? नींद भी नहीं आ रही है। बेकार बैठना भी नहीं चाहता ! क्यों न तब तक मैं इन पत्रों को पढ़ लूं। वैसे तो इनको बार-बार पढ़ने से क्या लाभ ! फिर भी एक बार और। आपत्ति भी कौन-सी ! हां, तो यह पहला पत्र है जो अमृतसर से बिट्टू ने भेजा है। और दूसरा एक लिफ़ाफ़ा है जिसमें ऑल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट के सुपण्टिण्डेण्ट की भेजी हुई एक मेड़िकल रिपोर्ट है।

बिट्टू लिखता है—'मैं मुश्किल में हूं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण अपनी शिक्षा को जारी रखना असम्भव-सा दिख रहा है। सोचता हूँ, मैं यहां आया ही क्यों ? मेरे पिता के पास जब मेरी उच्च-शिक्षा के लिए पैसे नहीं थे, तो यहां मुझे भेजा ही क्यों ? महीने में दो सौ रुपयों से गुज़र नहीं होती है यहां !'

यह एक लिफाफा है। लिखा है—'दिल का भयंकर रोग ! रोमेटिक हार्ट ड़िज़ीज़ ! इस समय बीमारी चरम सीमा पर और यदि ऑपरेशन

नहीं हुआ तो रोगी का बचना मुश्किल !'

मैं इन दोनों पत्रों को सामने वाली मेज़ पर सम्भाल कर रख देता हूं। वैसे तो, इस पर कई पुस्तकें और कापियाँ कतार में रखी हुई हैं। सोचता हूं, किसी दिन इनको सहन में जलाकर राख कर दूं। जिस चीज़ का समय पर उपयोग न हो सका, उस चीज़ का क्या महत्व···मगर नहीं मैं ही गलत सोचता हूं। ये वे पाण्डुलिपयाँ हैं, जिनको मैंने अथक परिश्रम से तैयार किया है। सच ही तो मैं उन दिनों 'लेखक-जिन्न' बन गया था। मेरे प्रेरणा-स्रोत का बहाव बहुत तेज़ हो गया था और मैंने एकदम कश्मीरी-साहित्य की अपनी अमूल्य रचनाओं में बढ़ोतरी की। उस समय मुझे लग रहा था कि लल्लद्यद और हब्बाखातून जैसों की विचित्रयों ने मेरे प्रेरणा-स्रोत का बहाव तेज़ कर दिया है और मैं लिखता रहा। लिख-लिखकर भी मुझे उस समय तसल्ली नहीं मिलती और मैं सोचता कि अभी मैंने कुछ लिखा ही नहीं।···मगर, लिखता तो ज़रूर था, किन्तु इस समय नहीं···उफ ! यह मुझे क्या हो गया। देखते ही मेरा बदन अकड़-सा क्यों गया ! वैसे जी नहीं करता कुछ काम करने को। इसीलिए तो मुझ से सब रुष्ट हैं। सब मेरे साथ उखड़-उखड़ कर बातें करते ! पत्नी कहती है कि इतना जो लिखा है, छपता क्यों नहीं। इस तरह समय बेकार नष्ट करने से क्या लाभ ! यार-दोस्त कहते हैं कि अब यह विद्वान बन गया है। पढ़ने-लिखने में अपने-आपको इतना व्यस्त रखता है कि अपनी बिरादरी का कोई ख़याल ही नहीं और कुछ 'साहित्य-मित्र' इस समय मेरी ओर देखकर इसलिए उत्सव मना रहे हैं, क्योंकि उनका कहना है कि अब मेरा साहित्य-सर्जक मरा हुआ है। उनकी दृष्टि में, अब मैं साहित्यकार नहीं, बल्कि एक मूर्ख हूं, पोंगा···। मैंसब कुछ जानता हूं, किंतु हाथ-पैर जोड़े बैठा हूँ।

खों···खों···खों···मेरी नज़र एकदम कमरे के उस कोने में पड़ती है। वहाँ वसंती सोयी हुई है न ! यह तो उसी को खाँसी आ रही है। कभी-कभी खाँसी के इस लम्बे दौर में उसका बुरा हाल भी हो जाता सांस लेना भी दूभर हो जाता है। हाथ-पैर अकड़ जाते हैं। वैसे तो अब कई वर्ष हो गये उसको इसी त[illegible] तब से कितने रोगी स्वस्थ हो गये,

किन्तु उसको इस रोग से छुटकारा नहीं मिला···मैं उसके पास जाता हूं। फिर धीरे-धीरे हाथ उसके सीने पर रख देता हूं। उसके दिल की धड़कन तेज़ हो रही है। मुझे लगता है कि कोई उसके सीने के अंदर एक बड़े मूसल से ओखली में धान-सा कूट रहा है मैं उसको दोनों हाथों से थामता हूं और वह करुण नेत्रों से मेरी ओर देख रही है। उसका चेहरा पीला पड़ गया है। मैं उसको चम्मच से पानी पिलाता, फिर बिखरे हुए बालों को करता हूं। खाँसी का यह लम्बा दौर अब धीरे-धीरे खत्म हो गया। वह आँखें खोलती है। आँखें—चमकती आंखें हैं उसकी! इस समय उसको देखकर ऐसा लगता है कि कोई हिरणी बिस्तर पर दराज़ लेटी हुई है। वह बहुत कमज़ोर हो गयी है। अस्थिपंजर! किन्तु उसके चेहरे पर ये चमकती आँखों के दो बल्ब देखकर ऐसा लग रहा है कि अब यह पूरी तरह स्वस्थ हो गयी है। सच तो यही है कि उसको दिल का भयंकर रोग अंदर-ही-अंदर काट रहा है। दम संभाल कर वह मेरी ओर देख रही है। फिर अपनी रुंधी हुई आवाज़ में कहती—'अभी···आप··· सोये नहीं।' उसकी यह बात सुनकर मुझे विश्वास ही नहीं आ रहा है कि यह वही कह रही है। मैं एक बार फिर उसके माथे पर हाथ रखकर कहता—'तुम सो जाओ, मुझे अभी नींद नहीं आ रही है।'

'रात्रि का तीसरा पहर है इस समय!'—वह फिर अपनी रुंधी हुई आवाज़ में कहती।

'अभी सोऊँगा'—मेरा उत्तर होता।

'मेरी कसम अब सो जाओ।'—वह फिर ज़िद पकड़ती है।

मैं एक बार फिर उसके माथे पर हाथ रखकर कहता हूं कि मैं अभी सोऊँगा, तू इसकी चिन्ता मत कर! इसके बाद उसकी आँखें फिर लग जातीं हैं। मैं उसके बदन पर धीरे-धीरे लिहाफ़ को सम्भालकर रख देता हूं और फिर अपने स्थान पर आकर लिखने बैठ जाता हूं।

मैं कलम तो ज़रूर उठाता हूं, किन्तु समझ मैं कुछ नहीं आ पाता कि लिखूं क्या? मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि अब मेरी खोपड़ी खोखली हो गयी है। कलम को एक तरफ फेंक कर मैं डॉक्टरी रिपोर्ट को एक बार फिर पढ़ता हूं। वैसे तो मैंने इसको कई बार पढ़ा हैं किन्तु

इस समय एक बार फिर पढ़ता हूं···यही तो वसंती की स्वास्थ्य-संबंधी रिपोर्ट है···वही तो दिल के भयंकर रोग से ग्रस्त है!···अब तो दिल का ऑपरेशन करना अनिवार्य सा बन गया है, नहीं तो किसी भी समय कुछ हो सकता है···अब यह रोग उसके लिए जान लेवा बन गया है। अब इस रोग का उपचार कोई दवा खाने से नहीं हो सकता! यह अब कैंची चलाकर ही ठीक हो पाएगा। यही अब इसकी एकमात्र चिकित्सा रह गयी है···किन्तु इसके लिए तो पैसा चाहिए, पैसों का ही तो सवाल है··· नहीं तो मैंने यह काम बहुत पहले किया होता···यह काम तो एक या दो सौ रुपयों से सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिए तो कई हज़ार रुपये चाहिए···यह तो वसंती को ऑपरेशन नहीं करना है, बल्कि उसको रुपयों से तोलना है। मगर मैं इतने रुपयों को कहां से लाऊँ! मेरे पास तो कुछ संचित नहीं है। मैं तो मुश्किल से पेट पालता हूँ और इतने रुपये·····

उधर मुन्नी माँ के पास सोयी हुई है। न जाने नींद में क्या-क्या बड़बड़ा रही है! उसने कोई विक्षिप्त स्वप्न तो नहीं देखा है! न जाने यह नींद में इतना क्यों रो रही है!

मैं अपने स्थान से उठकर उसके पास जाता हूँ। उसके माथे पर हाथ रखता हूँ। इतने में वह फिर नींद में खो जाती है! बेचारी मुन्नी··· अभी तो उसकी आयु ही क्या! बारह वर्ष! असमय में समझदार हो गयी है। तिस पर भी यह घर के काम का भार! माँ की सेवा-टहल करने का भार, यह सब तो उसी के कन्धों पर है। मैं यही सोच रहा था कि उसने बिस्तर से हाथ-पाँव पसार कर निकाले और एक करवट ली। इतने में वह नींद में एक बार फिर बड़बड़ाने लगी—'मम्मी! मैं तुम्हें मरने नहीं दूंगी!' यह सुनकर मेरी आँखों से आँसू बह निकले। मैंने उसके चेहरे की ओर तक कर देख लिया। फिर उसके बदन पर लिहाफ़ को इस तरह सम्भालकर रखा कि सर्दी न लगे।

टन-टन-टन—इतने में पास वाले मंदिर से आरती की घंटियां बजने लगीं। सुबह की बेला! आखिर [illegible] काली-स्याह रात्रि ने पीछा

छोड़ा और सुबह की बेला ने गले से लगाया। पक्षियों का मधुर कलरव सुनकर मैंने अपने-आपमें एक नयी ताज़गी-सी महसूस की। रात्रि के लम्बे जागरण के बाद मेरी आंखें लग गयीं। कुछ क्षणों में इनके सामने कई तस्वीरें आने लगीं—आत्मा और यमदूत आपस में झगड़ा करते हुए, भूत और भविष्य पैसों के लिए तरसते हुए और एक सुन्दर-सी तस्वीर, जो प्रेम के रंगों से सुसज्जित थी। इन तीनों तस्वीरों के मध्य एक ऐसी तस्वीर भी दिखाई दी, जो मेरे पिता की थी। पिता परिश्रमी और आत्म-विश्वास की मूर्ति ! जो मुझे हर बार यह कहकर समझाता था कि जीवन संघर्ष है। यह एक विशाल समुद्र है। इसको वही पार कर सकता है, जिसके पास हौसला हो। हौसले के बिना इसमें डूब जाने का खतरा है। यही हौसला लेकर उसने अपनी उम्र में कई मुसीबतों का सामना किया था—पत्थर के पहाड़ों को गिराया था, आग की लपटों में छलांग लगायी थी तथा आषाढ़ की तपती धूप में रेत के मैदानों को पार किया था। हां, यह वही तस्वीर है—मेरे पिता की !

पक्षियों का मधुर कलरव, कमरा प्रकाश से भर गया था। मैंने आंखें खोलीं और कलम उठाकर लिखने में तल्लीन हो गया। एकदम मैं सोचने लगा कि कौन कहता है, मेरा प्रेरणा-स्रोत सूख गया है !···अब भी मुझमें अपनी रचनाओं से पाठकों के दिल जीतने की क्षमता है। मुझसे मृत्यु अभी दूर है। मैंने हिम्मत नहीं हारी है। अब भी मेरी इस कलम में तलवार के साथ मुकाबला करने की ताकत है क्योंकि मैं उसी पिता का बेटा हूं जो हर मुसीबत का मुकाबला खुशी से करता था। उसका खून तो मेरी नस-नस में भरा हुआ है !

सुबह के सात बज गये। मैं इन पत्रों को एक बार फिर पढ़ता हूं। फिर मैं इन दोनों का ऐसा उत्तर लिखकर भेजता हूँ कि जैसे मुझमें इन दोनों सीमाओं पर लड़ने की क्षमता है···इस प्रकार मुझे महसूस हो रहा है कि मैंने पिता की परम्परा को कायम रखा है।

चुनौती

□

ज़रूरी बुलावा था। किन्तु वहां पहुँचने पर जो कुछ देखा और सुना, उसे याद करके अभ भी चौंक जाता हूँ।

मेरा मित्र त्रिलोकीनाथ बाल्यकाल से ही मस्त स्वभाव का रहा है। घर-बार की चिन्ता से मुक्त ! उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य भर-पूर पैसा कमाना रहा है। पैसा खर्च करना वह जानता ही नहीं। उसको वह उसको पत्नी के हवाले करके भूल जाता था।

त्रिलोकीनाथ की पत्नी भी खूब है। उसका यौवन दिनों-दिन निखर रहा है। पति के कमाये भरपूर पैसे को देखकर उसे लगता है कि यदि कोई अमीर है, तो सिर्फ वही है। किन्तु सच तो यह है कि बचपन में खाने के लिए भरपूर रोटी तथा ओढ़ने के लिए कपड़ा मयस्सर न था। एक गरीब परिवार में जन्म लिया था उसने ! यह उसके शुभ कर्म ही थे कि वह त्रिलोकीनाथ के घर में आयी और आज···आज तो उसपर नज़र नहीं ठहरती। यहां वह दुलहन की तरह सजी-संवरी रहती और यही कारण है कि त्रिलोकीनाथ उसको बार-बार यह कहकर टोकता कि तेरे ही कारण बच्चे भी निर्लज्ज बन गये हैं।

घर में एक और प्राणी है—त्रिलोकीनाथ की एकमात्र पुत्री आशा। वह विवाहित है। उम्र लगभग [illegible] पच्चीस वर्ष, मगर लगती है सोलह वर्षीय कुंवारी। उसके [illegible] मगर कैसी विडम्बना !

वह परित्यक्ता है । यह जानने की मैंने आज तक कोई कोशिश नहीं की ; मगर आज मैं इस पर कुछ सोचने के लिए मजबूर-सा हो गया । आज तक मुझे इस बात का अटल विश्वास था कि जीवन का आनन्दमय होना तभी संभव हो सकता है ; जब इसमें दो दिलों का मिलन हो । एक साहित्यकार के नाते मैंने अपनी कई रचनाओं में इसका इसी रूप में निरूपण किया है । इस सम्बन्ध में मेरे कुछ अपने आदर्श थे; मगर आज···आज मैं गहरी नींद से बेदार हो गया । मेरी आंखें एकदम खुल-सी गयीं । मैंने जाना कि जीवन का आनन्द बस इतने से ही नहीं लिया जाता, बल्कि दो दिल दूर-दूर रहकर भी मधुरता और रस प्राप्त कर सकते हैं ।

मैं वहां पहुंचा । लेकिन दरवाज़ा भीतर से बन्द था । मैंने दरवाज़े को खटखटाया, लेकिन बहुत देर तक किसी ने दरवाजा ही न खोला । बहुत गुस्सा आया इन पर । सोचा, मैं तो यहां आवश्यक फोन के बुलावे पर आया हूँ और इन्होंने यह क्या सरे-शाम दरवाज़ा बन्द कर रखा है । मगर कहा कुछ नहीं । कुछ देर बाद मुझे अन्दर लेकर दरवाज़ा फिर बन्द कर लिया गया ।

अन्दर का वातावरण मुझे कुछ संगीन-सा लगा । कमरे के एक कोने में त्रिलोकीनाथ और उसकी पत्नी बैठे थे और दूसरे कोने में आशा । सब गुमसुम थे । इनको देखकर मुझे लगा कि यहां कोई झगड़ा हो गया है । शायद पति ने पत्नी को पीटा है या मां-बेटी में कहा-सुनी हो गयी है । असल कारण क्या है ? उसे मैं अन्दर जाते ही समझ न सका ।

मैं कमरे के अन्दर आया और त्रिलोकीनाथ ने बराबर बैठने का संकेत किया । वह बोला कुछ नहीं । मैं बैठा और मां-बेटी ने एक ही नज़र में मेरी ओर देखा । मैंने भी उनकी ओर ऐसे ही देखा । शायद मेरा काम नहीं था बात आरम्भ करना । इसलिए उनसे कुछ पूछना मुनासिब नहीं समझा । बिना कुछ कहे, मैं उन्हीं के बोलने की प्रतीक्षा करने लगा ।

अंत में त्रिलोकीनाथ ही बो[illegible] उसका गला भर्रा रहा था और आंखों में आंसू थे ।

'बोलो भई [illegible] अच्छी तरह कट गये । न

जाने आगे क्या होने वाला है ?' बड़ी कठिनाई से इतनी बात कहकर वह दोनों हाथों में मुँह को लेकर अपने को रोने से बचाने की कोशिश करने लगा ।

मैंने त्रिलोकीनाथ को गले लगाया । साथ ही मेरी दृष्टि आशा की ओर गयी । वह सख्त थी । उसमें किसी तरह का अनुपात न था । वह मेरी ओर ऐसे देखने लगी, जैसे कोई कसाई बकरी को काटने से पहले देखता है ।

'मगर बात क्या है ?'—मैंने त्रिलोकीनाथ से पूछा ।

'यह इस चुड़ैल से पूछो, जिसने मुझे किसी को मुँह दिखाने लायक न रखा ।' त्रिलोकीनाथ ने पत्नी की ओर संकेत करते हुए कहा ।

त्रिलोकीनाथ की पत्नी ने पहले मेरी ओर देखा, फिर बोली—'ऐसा मन क्यों हारते हो ? जायेगी, मनाती हूँ इसे ! देखते नहीं ।'

'इसको तुमने ही खराब किया । आखिर कब जायेगी ? क्या तभी जायेगी, जब वह किसी दूसरे के साथ···। ओफ ! मैंने इसकी शादी ही क्यों की ।' त्रिलोकीनाथ गरज उठे ।

आशा के चेहरे पर उद्धत धैर्य था और प्रतिबद्धता भी । वह पिता की ओर रुख करके बोली—'किसने कहा था मेरी शादी करने को ? मैंने माना था उस दिन क्या ? आप ही सबों को कहते थे कि लड़का अच्छा है, अच्छे परिवार का है, सुशील है और न जाने क्या-क्या ! मुझे उसने भरी जवानी में छोड़ दिया, तो ठीक है । लेकिन अब मैं उसके संग नहीं रह सकती ।'

मां ने बेटी की तरफ आंखें तरेर लीं । कहा—'कैसी बातें करती हो तुम । तुमको जग हंसाई का ख्याल भी नहीं है क्या ! इतना भी एहसास नहीं है तुझमें कि बच्चे बड़े होकर बाप को ढूंढ़ेंगे ।

'न वह मेरा पति और न इनका बाप, बस !'—आशा का छोटा-सा उत्तर था ।

त्रिलोकीनाथ आशा की ओर देख[illegible]हा । मैं पूरी तरह समझ नहीं पाया था कि आखिर बात क्या है । आ[illegible]हरे पर यह उद्धत धैर्य मैंने आज तक नहीं देखा था, यद्यपि मे[illegible]रह वर्षों से आना-

जाना रहा है । आशा आज इस तरह बातें कर रही थी मानो लाल चौक में एक बड़े जन-सम्मेलन में भाषण दे रही हो ।

अब त्रिलोकीनाथ के लहजे में तेज़ी-सी आने लगी कहा—'तुमको शरम नहीं आती ऐसी बातें कहने पर ? तुम्हें नौकरी का नशा है क्या ? त्राहिमाम !'

आशा ने कुछ नहीं कहा । वह हम तीनों की ओर देखने लगी ।

मैंने अवसर पाकर उनसे एक बार फिर पूछा—'आज यह झगड़ा क्यों ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता ।'

'अरे पति ने इसको कई वर्षों के बाद अपने पास आने को कहा है ; मगर यह उसके संग रहने के लिए मानती ही नहीं । तू ही बता भाई, यदि यह ससुराल नहीं जायेगी, तो वह तलाक नहीं देगा इसे ! यह मरती भी नहीं । इसने मुझे नाहक परेशान कर रखा है ।'—त्रिलोकीनाथ ने कहा ।

'यदि आप चाहते हैं तो मैं मर जाऊँगी । मैं दरिया कूदकर आत्म-हत्या कर लूँगी ।'—आशा ने बीच में कहा ।

'हां, मर जा, तेरे लिए अब यही अच्छा रहेगा'—त्रिलोकीनाथ न गुस्से में कहा ।

'क्या बकते हो । तुम्हें शर्म नहीं आती । बेटी के साथ ऐसी बातें करते तुम इस छोटी-सी बात को क्यों नाहक उलझाते हो !' त्रिलोकी-नाथ की पत्नी गरज उठी । फिर उसने बेटी से कहा—'आशा ! किस सोच में पड़ गयी । तू क्यों रोती है । चुपकर, मेरी कसम ।' वह फिर मेरी ओर देखकर बोली—'अरे देवर ! अब तुम ही इसको समझाओ न । तुम्हें भी इस पर अधिकार है ।'

अब तक मैं कुछ भी समझ नहीं पाया था । मुझे लगा, अब बातों का रुख मेरी ओर मुड़ गया है और सच भी यही निकला । मैं असमंजस में पड़ गया । इस बन्द कमरे में मैंने दम घुटता-सा महसूस किया । मुझे कुछ बोलना ही न आया । आखिर आशा बीच में ही बोली—'यदि मैं अविवाहित होती, तो क्या लोग मुझे मार डालते ?' ओफ ! कैसी विड़म्बना है ।'

आशा की इन बातों को सुनकर मुझे ताज्जुब-सा हुआ । मुझे लगा, आशा जानबूझकर अपने-आपको दरिया में डुबोना चाहती है । वह जीवन का कोई लक्ष्य नहीं पाना चाहती । यह क्यों ? इसने शादी की है, दो बच्चों की मां बनी है, फिर भी वह ससुराल क्यों नहीं जाती, अपने पति के संग क्यों नहीं रहती । यह सब मैं अपने आपसे पूछने लगा । लेकिन तभी उसकी मां बोली—'हम कोई बहाना-वहाना नहीं जानते । केवल यह चाहते हैं कि तू अपने पति के संग रहे, अपने घर जाये ।'

आशा ने सफ़ाई पेश करते हुए कहा—'अरे, मैं वहां जाऊं तो किस लिए ? मुझे क्या पाना है वहां जा कर ! तुम ही कहो ?'

'चुपकर, शर्म नही आती तुझे ! कैसा पागलपन रचा है यह तूने ।' मां ने गुस्से में कहा ।

आशा के चुप होने के साथ ही कमरे में एक बार फिर चुप्पी छा गयी ।

आखिर त्रिलोकीनाथ ने मुझसे कहा—'बोलो भई, अब मैं क्या करूं । कुछ सुझाव दो ना ।'

मैं कुछ दम सम्भाल कर बोला—'क्या सुझाव दूं यार । वैसे तो, मैं भी यही चाहता हूँ कि आशा हर हालत में अपनी ससुराल जाये ।'

'यह तो सब चाहते हैं । वह क्या मानती है ?'—उसका छोटा-सा उत्तर ।

'नहीं मानती है ?'—मैंने इस तरह कहा जैसे मुझे असली बात का पता ही न था । फिर आशा से पूछा—'क्या यह सच है ?'

'सच नहीं होता, तो ये क्यों मुझे यहां से निकाल देते ! मैं यहाँ स्वर्ग में हूँ और ये कहते हैं कि नर्क का रास्ता नापो'—आशा ने झुंझला कर कहा ।

यह सुनकर त्रिलोकीनाथ को बहुत गुस्सा आया । गुस्से में वह न जाने क्या बड़बड़ाया, लेकिन मैं इतना ही सुन पाया—'कर लो बात, दे दो जवाब । इसके साथ तुम्हें बात करनी नहीं आयेगी । इसका अपना दर्शन है जिसका न आदि है न अंत ।'

मुझे भी आशा की ये बातें स[illegible]ुस्सा आया । मैंने उसको कहा

'कैसी बातें करती हो तुम ? ससुराल में रहकर क्या सभी स्त्रियां नर्क में होती हैं। लड़की को आखिर शादी करनी ही होती है। ससुराल में जा कर वह पहले पत्नी बनती है, बाद में मां। यह दस्तूर न जाने कब से चला आ रहा है।'

'मगर ऐसा आजकल जरूरी नहीं, खासकर मेरे लिए।'—आशा ने निर्भीक होकर कहा।

'सुना आपने'—त्रिलोकीनाथ ने कहा। फिर आशा से कहने लगा 'और कुछ कहना है ?'

यह सुनकर मां तड़पकर बोली—'अब क्यों तुम अपनी बात पर अड़ रहे हो। सयानी लड़की के साथ इस तरह झगड़ा करना अच्छा नहीं लगता, समझें !'

अब की बार त्रिलोकीनाथ अपने को काबू में न रख सका। वह उठा और एक ही लात से पत्नी का भुरकस निकाल दिया। उसने चीख मारी, किन्तु आशा ने उसको थामकर दोनों हाथों से मुँह बन्द कर दिया। कमरे में खलबली-सी मच गयी। मैंने त्रिलोकीनाथ को जोर से थामा। आखिर जब गुस्सा कुछ उतरा तो उसने दरवाज़ा खोला और बाहर निकल गया और बड़बड़ाया—'इसी चुडैल ने इसको खराब किया है, लाड़-प्यार करके पैसा, दे-दे कर।'

कमरे में फिर चुप्पी हो गयी। मैं यथावत् अपने स्थान पर बैठ गया। सचमुच मर्द की मुसीबत स्त्री नहीं समझ पाती। स्त्री कुछ भी करे, समाज की अदालत का सामना मर्द को ही करना पड़ता है। समाज मर्द को ही कोसता है—यही सोचते-सोचते मेरी दृष्टि आशा की ओर गयी, उसका चेहरा लाल-लाल सा हो गया था। सिर झुकाकर वह न जाने क्या सोच रही थी कि मैंने उसकी पीठ पर एक हल्की-सी थपकी लगायी। वह चौंक-सी गयी। मैं उसको समझाने लगा—'आशा ! तुम एक समझदार लड़की हो ! क्यों तुमने मां-बाप को इतना परेशान कर रखा है। ससुराल क्यों नहीं जाती ?'

यह सुनकर आशा कुछ परेशान सी होने लगी। मगर वह बोली कुछ नहीं।

'क्यों, बोलती क्यों नहीं ?'—मैंने उससे एक बार फिर पूछा।

आशा ने मेरी ओर से नज़रें फेर लीं। इन नज़रों में आज कुछ और आकर्षण था। आज उसकी आंखें कुछ बोलती-सी दिखती थीं। मानो कह रही थीं कि तुम मुझे क्यों नहीं समझते। उसने कहा—'मैं जानती हूँ कि मां-बाप को मेरे यहां रहने से दुःख पहुंचता है क्योंकि मैं विवाहिता हूँ, दो बच्चों की मां भी। मगर मैं इनसे पूछना चाहती हूं कि यदि मैं कानी, गूंगी या लंगड़ी होती तो मेरे साथ कौन शादी करता ! और तब क्या ये मुझे यहां से निकाल देते ?'

मैंने आशा की ओर आश्चर्य से देखा। अब उसके साथ बातें करने में मेरी दिलचस्पी बढ़ गयी। मुझे लगा, उसकी इन उलझी हुई बातों में जरूर कुछ न कुछ राज़ है। मैंने उससे कहा—'यह बात नहीं है आशा, न तुम कानी हो, न गूंगी और न लंगड़ी। तुम तो कमलनी की तरह सुन्दर लगती हो। अलबत्ता तुम्हारे ससुराल न जाने से यह लगता है कि तुम पति देव से बदला लेना चाहती हो।'

'नहीं, यह बात नहीं है।'—वह एक ही सांस में बोली।

'फिर कौन-सी बात है ?'—मैंने पूछा।

उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। केवल मेरी ओर इस तरह देखा मानो कह रही हो कि तू कौन लगता है मेरा जो मैं तुझको सब कुछ बता दूं। मेरे निजी मामलों में हस्तक्षेप करने का तुझे क्या अधिकार ? मैं चुप रहा। वह दीवार की ओर देखने लगी।

मैंने पूछा—'क्यों आशा ! मुझे कब तक अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।'

उसने एक लम्बी आह भर कर कहा—'प्रश्न ? कौन-सा प्रश्न ?'

'यही ना, कब तक यहाँ···।' मैंने धीरे-से कहा।

'वहाँ क्या करना है मुझे।' उसने जोर देकर कहा—'आप ही बताइये, वहां जाकर मुझे क्या पाना है ! आप कहेंगे पति का संग। मैं उसके साथ रहूँगी मगर उसके मुझे क्या मिलेगा ! क्या यही मिलेगा कि कल मैं एक दर्जन बच्चों की माँ बन जाऊँ[illegible] मेरा शरीर अस्थि-पंजर होकर रह जायेगा तथा गृहस्थी की बेड़ियाँ [illegible] पर बन जायेंगी। पहनने को

कपड़ा तथा खाने को रोटी नसीब न होगी। आप ही बताइये, वहाँ जाने से मुझे कौन-सा सुख नसीब होगा।'

आशा की इन बातों को सुनकर मैं कुछ समय के लिए चुप हो गया। मगर मुझे संतोष नहीं हुआ इन बातों से। मैंने कहा—'दरअसल यह बात नहीं है आशा ! आजकल बच्चा होना या न होना स्त्री-पुरुष दोनों पर निर्भर करता है। आजकल यह भगवान की देन नहीं मानी जाती।'

मगर मेरी बात को काटकर वह बीच में ही बोली—'यह सब मैं अच्छी तरह जाननी हूँ। मगर मुझे क्या पड़ी है ऐसे हथियारों को काम में लाने की ! क्या मेरे ये दो लाल ससुराल जाने से कुछ कम हैं ! क्या पता, ये कल मुझे ऐसा सुख और शान्ति प्रदान करें जो ससुराल या मायके में मुझे किसी से नसीब न हुई हो। आप इसे एक अजीब बात मानेंगे, मगर मैं कहती हूँ कि अब मुझे पति से ज़्यादा इन दो बच्चों से प्रेम है।'

मैं आशा की ओर देखता रहा। उसकी इन बातों से मुझे एक ज़बर-जस्त धक्का लगा था। आशा के इस उत्तर के बाद वहाँ और अधिक टिके रहना मेरे लिए सम्भव नहीं था, ठीक वैसे ही जैसे मेरे विचार से, आशा को उसके पति के घर भेज पाना अब किसी के लिए भी असम्भव था।

पत्नी, पैसा और प्यार

□

कैंसर !

गत दो वर्षों से जहाँ कहीं मैं जाता, वहाँ मिले सभी के मुख पर केवल एक वाक्य आ-जा रहा था—'सत्थूवाले रत्नलाल को कैंसर हो गया है।' यह जानकर भी कि कैंसर एक असाध्य रोग है और जिस किसी को हो जाये, उसको यमदूत निगल लेता है, फिर भी सभी के मुख से अनायास निकलता—'हे परमेश्वर ! रत्नलाल को बचा ले, नहीं तो इसकी पत्नी लुट जायेगी। इसके बाद उनकी आँखें आँसुओं से उमड़ आतीं। गत तीन दिनों से सभी की यह तड़प और बढ़ गयी क्योंकि रत्नलाल की हालत पहले से ज्यादा खराब थीं। उसको शहर के बड़े अस्पताल के वार्ड नं० ३ में इण्डोर किया गया। तब से यहाँ तिल रखने का जगह न थी। पास-पड़ोसी, सगे-संबंधी, घरवाले सभी यहाँ देखते ही देखते जमा होने लगे। गुम-सुम थे और रत्नलाल की पत्नी जया तड़पकर कभी छाती पीटती, कभी दीवारों से सिर पटकती। रो-रोकर उसकी आँखें लाल हो गयी थीं और जब कभी अस्पताल का बड़ा डाक्टर रत्नलाल की जाँच करने वार्ड में आ जाता तो वह उसको हाथ जोड़ती और रीती निगाहों से विनती करती हुई कहती—'डाक्टर साब, मेरी अमानत अब आपके हवाले है। इसको बचा लो, नहीं तो मैं लुट जाऊँगी [illegible] यौवन का नव-बहार असमय ही उजड़ जायेगा।'

गत तीन दिनों से जया ने कोई पीर-फकीर नहीं छोड़ रखा था जिसको उसने खैरात के तौर पर पैसा न दिया हो। क्षीर भवानी तथा ऋषि पीर अस्तापन के लिए प्रसाद बोल रखे थे और हज़रतबल तथा खानकाह के लिए नियाज़,'कुत्तों को रोटियाँ खिलाने की बात छोड़िए ! वे तो इन्हीं तीन दिनों में 'शेर-बबर' बन गये थे। ऐसा करने का उद्देश्य मात्र यह था कि रत्नलाल फिर होश में आये, अपनी पत्नी के साथ एक बार बात करे। इन दिनों मैं भी अस्पताल में रहा। रत्नलाल की हालत को देखकर मेरी आँखें रह-रह कर भर आतीं ! वह छुटपन का दोस्त था ! बहुत दुःख हो रहा था। छुटपन से लेकर अब तक उसके साथ बिताये दिन मेरे मन-मस्तिष्क में किताब के पृष्ठ बनकर पलट रहे थे।

उसको होश में लाने के लिए यद्यपि डॉक्टरों ने अपना पूरा कौशल लगा रखा था तथापि यह भयंकर रोग काला नाग बनकर उसको अन्दर-ही-अन्दर खोखला किये जा रहा था। तीसरे दिन ज्यों ही चार बज गये तो डाक्टर साहब उसकी जाँच करने आये, किन्तु उसकी ओर देखकर ही उन्होंने होंठ विकृत किये। मेरा दिल धक्-धक् कर रह गया। वार्ड में मुझे यमदूत की सी छाया दिखने लगी। मैं उसकी बगल में बैठ गया। उसके पीले मुख को एकटक देखने लगा। इतने में डाक्टर साब वार्ड से बाहर गये। कुछ मिनट बाद बाहर से कुत्तों ने भौंकना शुरू किया। न जाने मैं क्यों चौंक-सा गया। भयभीत हो, मैंने उसकी ओर एकदम देखा। लेकिन···लेकिन उसके प्राण-पंखेरू कब के उड़ गये थे।

वार्ड में रोना-धोना शुरू हो गया। जया बद्हवास-सी हो गयी। उसने बालों को नोचना शुरू कर दिया। बाद में वह खिड़की में से कूदकर आत्महत्या करने को तैयार थी लेकिन पिता ने उसको दोनों हाथों से थाम लिया। उसके अन्दर 'जिन्न-शक्ति' पैदा हो गयी थी। अन्त में पछाड़ खाकर वह फर्श पर गिर पड़ी। उसको मोटर में बिठाकर कोठी तक लाना दूभर हो गया।

शव जब घर लाया गया। तो [illegible] मरसियाँ शुरू हो गयी, सगे-संबंधी तथा यार-दोस्तों ने यहाँ तब [illegible] आँसू बहाये जब तक उसको अग्नि-देवता के हवाले नहीं किया [illegible] को दहलाने वाला दृश्य ! रत्नलाल

—जवान, बाल-बच्चों वाला और सबसे बढ़कर नेक और ईमानदार—यह संसार छोड़कर चला गया। राह तो सबों की वही है, लेकिन करते यहाँ सब चर्चा नेक-बदी की—शमशान-घाट से घर वापस लौटते सब इसी एक वाक्य को दोहरा रहे थे।

मैं भी घर वापस आया। उस समय ऐसा महसूस हो रहा था कि आज मैं अपनी वह बहुमूल्य चीज़ खो आया हूँ जिसको मैंने छुटपन से खूब संभालकर रखा था। मेरी आंखों के सामने जया की तस्वीर बार-बार आ रही थी। रो-रोकर उसकी आंखे लाल-लाल हो गयी थीं। लाल-अनार जैसे गालों पर पीलापन छा गया था तथा काले घुंघराले बाल घास का गट्ठा बन गया था। मैंने महसूस किया कि आज वह मेरी भाभी ही नहीं बल्कि एक अमानत है जो वह अपने पीछे छोड़ गया है। वह तो खिले हुए फूल की टहनी थी जिस पर असमय ओले पड़ गये और वह बेबस और लाचार हो गयी।

उस दिन सारी रात मुझे ज़रा भी नींद नहीं आयी। दूसरे दिन जब सुबह के दस बज गये तो मैं दफ्तर पहुँचा। वहां हैड़कलर्क काशीनाथजी मुझ पर नाराज़ लग रहे थे। मैंने जाना तीन दिनों की गैर-हाज़िरी के कारण मेरे काम का बोझा तो इन्हीं के कन्धों पर रहा होगा, इसलिए मुझ से नाराज़ हैं। मैंने उनसे कुछ नहीं कहा, केवल अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

मेरी इस चुप्पी से वह और अधिक जल-भुन गया कहा—'बताओ जी, क्या हाल है ? तीन दिनों से कहां गायब थे ? डल-झील की सैर को तो नहीं गये थे ?'

मुझे बहुत गुस्सा आया, कहा—'यदि ऐसी बात होती तो मैंने आपको भी आमंत्रित किया होता। दरअसल बात कुछ और थी। छुटपन का एक दोस्त था मेरा जो जवान पत्नी और तीन बच्चों को अपने पीछे छोड़कर चल बसा। मरने वाला मर गया, किन्तु सोचता हूं, उसकी पत्नी की गुज़र अब कैसे होगी ?'

काशीनाथ तो कुछ अजब आद[illegible] है। बाल की खाल खींचना तो इसके स्वभाव का अंग है। इसकी [illegible] में व्यंग्य होता है। मेरी बात को सुनकर उसने दुःख प्रकट करने [illegible] -ज़ोर से हंसकर कहा—

उठाने आयी तो मेरी पत्नी ने उससे पूछा,—'माला ! कल रात यह किसके साथ तू-त, मैं-मैं कर रही थी । यह गालियां···'

'अबे'—कुदाली और झाड़ू को नीचे फेंककर वह मेरी पत्नी के समीप आकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी—'जाने यह लसशेख का लड़का मेरे पीछे क्यों पड़ा हुआ है ? बदमाश, कमीना-बेईमान ! मेरे पांव के जूते की गर्द !'

'बात क्या है ? कुछ कहा है उसने'—मेरी पत्नी दरजवाब बोली ।

'अबे, अभी समझी नहीं ! कहता है, गनीशेख को तलाक दो और मेरी साथ शादी करो'—उसका उत्तर था ।

'क्यों ?'—मेरी पत्नी ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा ।

'मैं क्या जानूं, इसको क्या हो गया है ? इसी को कहते हैं न 'बवासीर ।' आजकल के लड़के तो हद से ज़्यादा आज़ाद हो गये हैं । ज्यों ही वह काम से वापस घर लौट आता है तो पहले स्नान करता है । फिर बालों को हद से ज़्यादा तेल मल कर तेल कंघी करता है । खाना खाने के बाद हुजरे की छत पर बैठकर सीटियां बजाते मुझे तंग करता है । अब तक मैं सब कुछ सह लेती, किसी से कुछ नहीं कहती थी । मगर कल शाम को वह बिना बुलाये मेरे हुजरे में आया । कहने लगा, यदि गनीशेख आज रात को कहीं गया है तो मैं यहां सो जाऊंगा ।' दरअसल वह मुझे भोली समझता है । मगर वह लफंगा यह नहीं जानता कि मैं इसके नस-नस का शुमार एक पल में दूर कर दूंगी । वह यह समझता नहीं कि मैं भी किसी की पत्नी हूं । वह क्यों मेरे पीछे पड़ा है ! बच्चे अभी यदि पैदा नहीं हुए तो क्या हुआ ! किसी-न-किसी दिन बच्चे की मां भी बन जाऊँगी । शादी हुए अभी कितना वक्त हो गया ! केवल एक वर्ष ! और यह हरामज़ादा कहता है कि यदि मेरे साथ शादी करोगी, लैला जैसी कद्र करूंगा, रोज़ ड़ल-झील की सैर कराऊंगा । और बच्चे का मुंह तो नौ महीने बाद ही दिखाऊँगा । देखती हो, उसका कलेजा फटता भी नहीं ? क्या कहता है मुझे !'—[illegible]ा ने यह सब अपने-हाथ को नचाते हुए कहा ।

यह सुनकर मेरी प[illegible] र्म से झुक गया । वह पसीनों से

तरबतर हो गयी । कहा—'पति से क्यों नहीं कहती ?'

'अबे, उसको क्या कहूंगी ! वह नाहक परेशान हो जायेगा । सोचेगा, शायद यही उसके साथ फंसी हुई है । मगर असल में यह बात तो है नहीं । अब तक तो मेरी अच्छी तरह देखभाल करता है, इसके बाद उससे भी हाथ धो लूंगी । तिस पर भी इस बात का डर है कि यदि उसके कानों यह बात पड़ जायेगी तो इसकी कुदाली से जान लेगा ही, मेरी नाहक मार-मारकर खाल उतारेगा । मोहल्ले वालों को इस बात का पता चलेगा और यदि कुछ ज़्यादा हाथापाई हुई तो पुलिस आयेगी ।'

माला वह स्त्री है जो भंगी-वर्ग से संबंध रखती है । यह तो हमारे समाज का वह वर्ग है जहां सुख हो या दुख, खुशी हो या गम, बात-बात में गालियां दी जाती हैं । स्वर का कैसा ही उतार-चढ़ाव क्यों न हो, एक-दूसरे को गालियां ज़रूर दी जाती हैं । यही कारण है कि हम पढ़े-लिखे एवं सभ्य लोग इसको नीच-वर्ग कहते हैं । मगर इस समय तो मुझे माला की जात बहुत ऊँची लगी···बहुत ऊँची ! मुझे लगा कि पति के प्रति उसके प्रेम की दीवार तो अब आकाश को छू गयी है । वह तो पति-प्रेम में पागल हो गयी है और किसी भी मूल्य पर उसको ठुकरा देना नहीं चाहती । यदि कल यह बात काशीनाथ को सुनाऊँ तो वह क्या कहेगा ? अपना सिर !—मैंने अपने-आपसे सोचा । किसी तरह माला ने आंगन का कूड़ा उठाया । मैंने जेब से एक रुपये का नोट निकाला और उसकी ओर बढ़ा दिया । उसको लेकर वह आशीष देती हुई चली गयी ।

दूसरे दिन मैं यथावत दस बजे दफ्तर आ गया । आज मैंने निश्चय किया था कि काशीनाथ के मन में एक साधारण स्त्री के प्रति जो विचार हिम की तरह जम चुके हैं, उनको मैंने अपने तर्क से पिघलाना है । आज उसको यह मानना पड़ेगा ही कि एक स्त्री का अपने पति के प्रति प्रेम निःस्वार्थ एवं निष्काम होता है ।

मैंने उसे यह सब किस्सा सुनाया । उसने भी बड़ी दिलचस्पी से सुना और अन्त में जाने एक जोरदार कहक[illegible] क्यों लगाया—व्यंग्य भरा । बहुत गुस्सा आया उस पर । मुंह से [illegible] ही निकला—'क्या हो गया तुम्हें ?'

इसके बाद उसने फिर गधे की तरह हँसना शुरू किया। फिर व्यंग्य भरे लहजे में कहा—'और कुछ सुनाना है यार ?'

'पसंद नहीं आया ?'—मैंने जलभुन कर कहा।

'नाराज हो गये ?'—उसके लहजे में अब नर्मी-सी आने लगी—'तुम तो हर समय मेरे कहने का मतलब गलत निकालते हो ! मैंने कभी यह नहीं कहा कि पति-पत्नी एक-दूसरे पर मरते नहीं। शादी के बाद दोनों एक-दूसरे की आत्मा और शरीर बन जाते हैं। दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं। दोनों का प्रेम मानो एक सुन्दर भवन है किन्तु यह किसी भी ढांचे पर खड़ा नहीं। यह एक पुख्ता ढांचे के बिना कायम नहीं रह सकता, या यों मानिए कि दोनों के प्रेम को पैसों की बैसाखियां चाहिए, ज्यों ही ये छूट गयीं तो न पति पत्नी का, न ही पत्नी पति की।'

मैं एकदम चुप हो गया। सोचा कैसा आदमी है यह ! छोटी-सी बात पर इतना बड़ा लैक्चर झाड़ता है ! कमरे में चुप्पी हो गयी। मैं उठा और फाइल को लेकर दूसरी कुर्सी पर बैठ गया और कुछ लिखने लगा। मगर मेरी अन्दर की तड़प अन्दर ही अन्दर आग बन कर रह गयी थी। यहाँ भी मैं अपने आपसे सोचने लगा कि कैसा इन्सान है यह ! स्त्री—एक नाजुक कली ! शीतल चिनार ! मेघाच्छदित आकाश पर चमकती बिजली ! मर्द की जीवन साथी ! घर की शोभा ! और सबसे बढ़कर प्रेम का पैकर ! मुजसमा ! मूर्ति ! क्या इसी को यह पैसों से तोलता है ? इसके दिल में एक स्त्री के प्रति इतना अनादर ! ताज्जुब है। एक अनपढ़ भी ऐसी बातें नहीं कहेगा। खैर, छोड़ो अब इसको। उसके साथ अब मैं इस विषय पर कुछ नहीं कहूँगा। समय पर वह स्वयं मानेगा कि सत्य क्या है। सत्य वस्तुतः वही है जो मैं कहता हूँ यह तो गलत राह पर है। मैं यही सोच रहा था कि इतने में चार बज गये। मैं दफ्तर से वापस घर की ओर लौट आया। आज मैं किसी भी रेस्तरां में चाय नहीं पीना चाहता था। विचार था कि आज घर पर ही चाय पीयूँगा किन्तु ज्यों ही हब्बाकदल के इस ओर पहूँचा तो एकदम चौंक-सा गया। वहां लोगों की एक बड़ी भीड़ [illegible] हो गयी थी। न जाने मैं क्यों थर-थर-सा कांप गया। पहले [illegible] यहां कोई जलूस रुका हुआ है किन्तु

बाद में पता चला कि ऐसी कोई बात नहीं, बल्कि यहाँ एक स्त्री अपने पति के साथ 'तू तू, मैं मैं' कर रही है। यहाँ सब इनके कलाम की दाद देते थे। बड़ी मुश्किल से मैं इस भीड़ को चीर कर उनके सामने खड़ा हो गया।

स्त्री गुलाबी साड़ी पहने थी। सुडौल शरीर तथा सुन्दर ! उसके चेहरे की ओर देखकर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता कि वह हर किसी पर रौब जमाने में उस्ताद होगी तथा उसके कानों में 'डेजहोर' देख कर यह बात साफ लग रही थी कि वह विवाहिता है।

मर्द 'फिरन' पहने था। पुराना ! चेहरे से बहुत कमजोर दिख रहा था। आंखें धंसी हुई थीं उसकी ! ऐसा लग रहा था कि वह कई दिनों से बीमार है। स्त्री को जाने क्या हो गया था कि वह हाथ में पांव की जूती लिये हुए ज़ोर-ज़ोर से कह रही थी—

'तुम कैसे कह रहे हो मेरे संग रहने के लिये। तुम ही बताओ, मुझे तुमसे क्या लेना है ?

'क्या बकती हो ! तुमने मेरे साथ शादी नहीं की ?'—उसने कहा।

'शादी करना तो कोई बन्धन नहीं। शादी के बाद एक पति को पत्नी के नाज़-नखरों का भी खयाल रहना चाहिए।'

यह सुनकर सबों के मुँह से हँसी का एक जोरदार फव्वारा-सा छूट पड़ा। मैं पसीनों से तरतर हो गया। इतने में वह मर्द बोला—'तेरे नाज़-नखरों का क्या खयाल रखा जाता ? तुझे क्या खाना नहीं मिलता ?'

'खाना तो सबों को मिलता है। मगर इज्जत का खाना तो नहीं मिलता हैं'—उसका उत्तर।

'आखिर तुम क्या चाहती हो ? बोलो—उसने कहा।

'जो सब स्त्रियां अपनी ससुराल में चाहती हैं। सुख-आराम, घूमने-फिरने की आजादी, नये कपड़े। इससे बढ़कर एक स्त्री का मान तभी है, जब उसकी जेब में पैसे हों।'

'तुम्हारा कहना सही है। किन्तु हर किसी के जीवन में धूप-छांव आती है। गरीबी तो ज्यादा देर तक नहीं रहती। इस समय यह गरीबी जो है, उसने तुमको ही नहीं, मुझे [illegible] रखा है।'—उसने कहा।

'फिर तो तेरा पिता झूठ क्यों बोल रहा था कि बेटा नौकरी करता है, बड़ा अफसर बन गया है और हमें इसी झांसे में डालकर तुमने मेरी ज़िन्दगी बर्बाद कर दी।'

'यह झूठ नहीं, सत्य है। मैं नौकरी कर रहा था। लेकिन···''उसने कहा।

'लेकिन तुम एक जाली दवा-कंपनी में नौकर थे न। कंपनी दिवालिया हो गयी और तुम घर बैठ गये'—उसने कहा।

'हाथ धरे नहीं बैठा हूँ। नौकरी की तलाश कर रहा हूँ। अच्छी-सी नौकरी मिलने के लिए समय लगता है।'

'करो तलाश। मैं भी देखती हूँ कब मिलेगी तुम्हें अच्छी-सी नौकरी! आजकल तो एम० ए० और पी० एच० डी० वाले नौकरी के लिए दरबदर फिरते हैं और तुम···' उसने कहा

'नौकरी मिलना तो कोई शर्त नहीं। कोई दूसरा काम करूंगा। किन्तु यह तो तभी संभव है, जब तुम फिर से घर बसाओगी।'

'काम करने के लिए पैसे चाहिए। वह तो तेरे पास हैं नहीं। तुमको शादी करनी थी, वह तो की मुझे नाहक बर्बाद किया।'—उसने कहा।

यह सुनकर मर्द को बहुत गुस्सा आया। उसका चेहरा लाल-लाल हो गया। वह उसको उसी दम एक लात से उसका भुरकस निकालता, किन्तु ऐसा न कर सका। इतने में वहां भीड़ में खलबली-सी मच गयी। कुछ लोग बीच में आये और उन्होंने मर्द को ठेलकर पुल के पार पहुँचा दिया। मैं भी उन के पीछे-पीछे हो लिया। यहां चौराहा है। लोगों की भीड़ इधर-उधर बैठ गयी। कुल मिलाकर यहां आठ-दस आदमी रह गये। मर्द का कुछ पता ही न चला कि वह कहां गायब हो गया। ज्योंही मैं चौक के दायें की ओर मुड़ गया तो एक वृद्ध पगड़ीधारी बोला—'यह तो स्त्री नहीं, आफत है, भरे बाज़ार में पति की कैसे दुर्गति की। कितनी बेशर्म और बेहया है यह! अब तो पत्नी अपने पति के प्रति प्रेम को पैसों से तोलने लगी है।'

'प्रेम को पैसों से तोलने लगी है?'—यह सुनकर मैं कुछ क्षण के लिए चौंक-सा गया। मैंने कहा—'क्या कहते हो पंडितजी? ऐसी बात तो है नहीं! एक पत्नी के प्रेम को [illegible] माँपना मुश्किल बात है। दरअसल

इनके झगड़े का कारण तो कुछ और ही है।' इतने में कोई दूसरा बूढ़ा बोला—'अरे, झगड़ा तो पैसों का नहीं, मुझे लग रहा है कि मर्द को किसी असाध्य रोग ने ग्रस लिया है, इसलिए तो वह उससे दूर भागना चाहती है।' यह सुनकर मैंने उसको एकदम टोका—'क्या ज्योतिष लगाया है आपने! जब किसी पर कुछ गुज़रती है तो यही कहा जाता है।'

मैं घर पहुंचा। यहाँ मुझे न जाने क्या हो गया! मैं एकदम इस सोच में पड़ गया कि इस घटना का हाल काशीनाथ को सुनाऊँ या नहीं। जाने क्या कहेगा वह इस संबंध में! किन्तु मिलेगा भी क्या मुझको यह सब सुनाने में! वह तो अपनी ही बात पर अड़ा रहेगा! दूसरे दिन मैं दफ्तर गया। वहां आज काशीनाथ ड्यूटी पर नहीं थे। नज़ीर ने कहा कि वह दो दिनों के अवकाश पर है, क्योंकि उसके किसी सगे-संबंधी का निधन हो गया है। तीसरे दिन ज्यों ही वे ड्यूटी पर आये, हम सब सहानुभूति प्रकट करने के लिए उसके पास गये। इतने में, मेरी समझ में यह नहीं आया कि बातों का रुख परसों वाली घटना की ओर कैसे मुड़ गया! काशीनाथ ने पहले कुछ नहीं कहा। केवल सामने वाली दीवार की ओर इस तरह देखा, मानो उसे कुछ याद आ रहा था। फिर मेरी ओर रुख करके बोला—'अवतारजी! सामने आ जाइये। एक दिलचस्प किस्सा सुनाऊँगा।' मुझे परसों वाली घटना एकदम दिमाग में घूम गयी। अपने-आपसे सोचा कि उस भीड़ में यह भी शामिल तो था न! उसने मुझे पकड़ लिया। आज मैं उसके सामने गूंगा हो जाऊँगा! फिर भी मैंने बात को काटकर कहा—'हां, वह परसों वाली घटना। हब्बाकदल में लोगों की भारी भीड़! धक्कमपेल! हां, मुझे पता है। उस समय मैं वहीं पर था।'

उसको मैंने भी देखा—काशीनाथ ने हंसकर कहा—'जो कुछ वहाँ हुआ, वह तो नयी बात नहीं। ऐसा पहले भी कई बार हुआ है। किन्तु इस स्त्री के साथ एक बात तो ज़रूर जुड़ी है। उसी को मैं कहना चाहता हूँ सुनो।'

'सुनाव, तो देर काहे की!'—नज़ीर ने एकदम कहा। फिर काशीनाथ की ओर इस तरह देखने लगा मा[illegible] की प्रतीक्षा में था कि कब

वह शुरू करे। जाने मुझे क्या हो गया। समझ में कुछ नहीं आया। अंत में काशीनाथ बोले—

'हां, यह तो उस पति की पत्नी है, जो आजकल बेकार भी है और बीमार भी। उसने तो पति का संग छोड़ दिया है। इसलिए नहीं कि वह रोगी है, बल्कि इसलिए कि वह बेकार है। वह उसकी फरमाइशें पूरी नहीं कर सकता। उसकी गुज़र पिता की कमाई पर है। तिस पर भी वह एक बच्चे का बाप बन गया है।'

मुझे स्त्री का पक्ष लेने का यह उचित अवसर मिला। कहा—इसमें उस पत्नी का क्या दोष! पति की इस तरह की हालत देखकर वह लाचार है।'

'आपका कहना सत्य है। दोनों आर्थिक कठिनाई से जूझ रहे हैं। मगर यहां मैं पति का दोष भी नहीं मानता।'—काशीनाथ ने कहा।

'क्या बकते हो? फिर किसका दोष है! क्या मेरा···'—मैंने जल-भुनकर कहा।

'न तेरा, न ही मेरा। न पति का, न ही पत्नी का। इसी को कहते हैं भगवान की देन। अवतारजी, मुसीबत तो हर किसी पर आती है। इससे मुकाबला करना ही जीवन है और जीवन का दूसरा नाम संघर्ष है। पति तो आर्थिक दशा सुधारने के भरसक प्रयत्न में है किन्तु कितने दुःख की बात है कि पत्नी उसकी इसमें सहायता नहीं करती।'—काशीनाथ ने कहा।

'मतलब?'—हम दोनों ने एक साथ कहा।

'दोनों की शादी उस समय हुई जब वह कुछ कमाता था। वह एक दवा कंपनी में काम करता था। किन्तु भाग्य की विडम्बना! अभी उसकी शादी हुए एक वर्ष भी न बीता था कि कंपनी दिवाला हो गयी। इसके साथ ही उसकी कमायी भी खत्म! अभी वह इसी परेशानी में था कि लड़की के माता-पिता ने यह प्रापेगंडा किया कि उनका दामाद पहले से ही इस जाली कंपनी में काम कर रहा था।'

उन्होंने लड़की को मायके [illegible]ाया। वहां उसने एक लड़के को जन्म दिया। और वह मां बन [illegible]

पति के लिए यह दुःख असह्य है। तभी से वह बीमार रहता है। वह मेरा पड़ोसी है। यदि कभी मैं उनसे पूछता हूँ कि ऐसी क्या बात है तो वह मेरी ओर आंखें फैलाकर देखता, कहता—'मैं तो बेकार हूँ न। कुछ कमाता नहीं हूँ। जब मैं कुछ कमाऊँगा, तभी वह मेरे संग रहेगी। शर्त तो यही है।'

'जनाब'—यह कहकर काशीनाथ के मुँह से हंसी का एक ज़ोरदार फव्वारा-सा छूट पड़ा—'वह भी एक स्त्री है। किसी की पत्नी! उसका अभिन्न अंग! उसने उसके साथ विधिपूर्वक शादी की, उसके साथ अग्नि-देवता के आठ फेरे लगाये। यहाँ तक कि अपना शरीर उसके हवाले किया। मगर सोचने की बात है कि यदि उसके जीवन-साथी को आर्थिक-संकट का सामना करना पड़ रहा है, तो उसने उसका संग क्यों छोड़ दिया। अवतारजी! बोलो·····'

मेरी आँखों के सामने जया, माला तथा उस स्त्री की तस्वीरें आयीं। स्त्री, प्रेम और पैसा—मैंने अपने-आपसे कहा, किन्तु किसी ने भी मेरी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

चंचल लहर, मुक्त धारा

□

नीला को क्रासिंग पर देखकर राजेन्द्र अतीत के कुछ क्षणों में भटक गया। जिन्हें भूलकर भी उसे भूलते नहीं बनता।

एक दीर्घ-निश्वास लेकर राजेन्द्र सोफे पर बैठ गया। नीला ने जो कुछ किया, अच्छा किया। वह ऐसा न करती, उसे कौन पूछता? वह अब नर्स बन गयी है। अब राजेन्द्र भी पहले के राजेन्द्र नहीं रहे। अब वे शादीशुदा युवक हैं। नीला भी यह जानती है कि अब उसका राजेन्द्र से कोई सम्बन्ध नहीं।

पीछे से राजेन्द्र की पत्नी के आने की आहट हो जाती है।

'अरे यह क्या, कब आये? चोर की तरह कमरे में घुस आते हो।'

'चोर न होता तो क्यों सबों से मुंह चुराता।'

'तबीयत कैसी है, ठीक तो हो? आज तो बहुत उदास लगते हो।'—रीता ने माथे पर हाथ रखते हुए कहा।

'हां, हां, ठीक हूँ।'—राजेन्द्र ने बे-रुखी से उत्तर दिया।

'दाल में कुछ काला तो ज़रूर है। आज आपका हंसता हुआ मुख रोता-सा लगता है।'

रीता हंसकर कमरे से चली गयी।

रीता भी खूब है। फूल जै[illegible]र और कोमल! एकदम आज़ाद मिज़ाज। अमीर घराने की [illegible] मां-बाप की एकमात्र पुत्री! होटल

में राजेन्द्र रीता का परिचय हुआ था। प्रथम मिलन में ही इन्होंने भविष्य में मिलने-जुलने के रास्ते साफ कर लिये। इनका मिलना कभी होटल में, कभी पार्क में या कभी क्रॉसिंग पर होता। राजेन्द्र उसे सामने देखकर आंखें नीचे न कर पाता।

राजेन्द्र से उसका विवाह हो गया। यह जानकर नीला पर मानो वज्र गिर पड़ा।

कॉलेज में नीला तथा राजेन्द्र सहपाठी थे। वहां इनका आपसी संपर्क इतना बढ़ा कि वे नित्य मिलते। घण्टों साथ बिताकर घर वापस चले जाते। एक दिन प्रोग्रामों के सिलसिले में राजेन्द्र उसे अपने फ्लैट भी ले गया, यहां भी बातों का ऐसा ही सिलसिला चल पड़ा। वही प्रेम की बातें! शादी की रस्म पालने की बातें और बहुत कुछ। मगर आज इस प्रेम ने दूसरा रुख अपना लिया। आज यह नीला के अन्तस की किसी चीज का भूखा बना। उसने राजेन्द्र के शरीर का रोम-रोम रोमांचित कर दिया तथा नीला को एक मिट्टी का पात्र बना दिया, जो छूते ही झूठा बन जाता है। उसने नीला से एक अपराध किया। एक जघन्य अपराध! एक अक्षम्य अपराध!! दिन बीतते गये, इसी प्रकार महिने भी। वही हो गया जो नीला ने राजेन्द्र से कहा था। नीला अब मां बनने वाली थी। किंतु अभी तक यह बात नीला तथा राजेन्द्र तक सीमित थी। नीला घबराने लगी, राजेन्द्र की अब वह प्रेमिका नहीं, एक समस्या थी।

राजेन्द्र के विकल्प का संकल्प डिगने लगा। संकल्प ने कहा—'दुसरों की चिन्ता मत कर। ज़रा तू अपने भविष्य का भी ख़याल रख। नीला अब मां बनने वाली है। यद्यपि बच्चा तेरा ही है, किन्तु क्या दुनिया वाले मानेंगे?' संकल्प और विकल्प बुरी तरह पड़ने लगे—'मैं क्या दुनिया वालों का नौकर हूँ। नीला को ऐसी दशा में छोड़कर उसकी क्या दशा होगी? वह कितना स्वार्थी समझेगी मुझे? मगर संकल्प ने हार नहीं मानी—'तुम स्वार्थी कभी भी नहीं [illegible] क्योंकि दुनिया में वह कौन-[illegible] है जहां ऐसे पाप नहीं होते हैं [illegible] फिर गूंज उठा···'मैंने [illegible] ज़रूर किया है, किन्तु उसको छो[illegible] रा पाप करूं। अब

संकल्प विकल्प पर बुरी तरह चोटें मारने लगे—'छि ! छि !! ज़रा यह भी समझो कि यदि पुण्य न होता, तो पाप को कौन पूछता ? संसार में यदि पुण्यात्मा ही पैदा हुए होते, तो आजकल ऋषि-मुनियों को कौन पूछता ? जाओ, एक आनन्द ले लिया, दूसरे का प्रबन्ध करो। ऐसे पाप हमारे कई राजा-महाराजाओं ने किये हैं। क्या दुष्यन्त-शकुन्तला का उदाहरण भूल जाते हो ! अब विकल्प ज़रा सुस्ताने लगा···'नहीं, नहीं, मैंने उसे कभी भी वासना की मूर्ति नहीं समझा, बल्कि उसे सच्चे दिल से प्रेम किया। आजीवन न बिछुड़ने का वादा किया है। ज़रा इसका भी ख़याल कर।' संकल्प फिर गरज उठे···'अरे पगले ! न बिछुड़ने का वादा ही किया है या इसके लिए अदालत में कोई गवाह भी रखा है। इसका क्या प्रमाण है कि होने वाला बच्चा तुम्हारा ही है ? वह तो इस समय कीचड़ में धुली हुई मूर्ति है, जिसे छूकर ही कीचड़ के दाग लगेंगे। उसे छूना मत। यदि ऐसा करोगे, तो मेरी समझ में तुम मूर्ख हो, नादान हो।' अबकी बार विकल्प मानो पूरी तरह हार गये और एक शब्द भी कहने को न रहा। पूरी तरह सुस्ताने लगे।

मगर आज राजेन्द्र ने शादी के बाद पहली बार नीला को देखा। उसने ज़िन्दगी को भी बहुत नज़दीक से देखने का प्रयत्न किया, किन्तु ज्यों-ज्यों वह इसे समझने लगा, त्यों-त्यों इसमें वेदना, वैषम्य, विद्रूप तथा विडम्बना ही पाई।

रीता फिर कमरे में घुस आयी।

राजेन्द्र ने उदासी भरे स्वर में रीता से पूछा—'एक प्रश्न है जिसका मुझे उत्तर चाहिए।'

'वह क्या ?'—रीता ने उत्सुकता से पूछा।

'यदि किसी ने जघन्य अपराध किया हो, तो उसका प्रायश्चित्त कैसे हो सकता है !'

'अपराध करने के भी कई तरीके होते हैं। कोई बेगुनाह मनुष्य का खून करता है, कोई किसी की सम्पत्ति गबन करता है या कोई पत्नी का अपमान···'

'नहीं, इससे भी [illegible] अपराध।'

'मतलब ?'

'अगर कोई किसी को दाग़दार बनाये, उसकी इज्ज़त-आबरु पर वार करे, उस समय क्या किया जाता है ?'

'तब भी प्रायश्चित्त किया जाता है।'

'वह कैसे ?'

'पुरोहितों के मन्त्रों से और···और।' रीता ने अपनी बात अधूरी ही रखी। उसका लाल-गुलाबी चेहरा एकदम पीला पड़ गया। न जाने वह क्यों शरमा गई। बातों का सिलसिला काटकर वह कमरे से बाहर आयी। अनजाने ही राजेन्द्र ने उसके लज्जाशील नेत्रों को निहारा। उस समय उसकी वह निराली मुस्कान होंठों से गायब सी हो गयी। गुलाबी होंठ पीले पड़ गये अपने-आपको सम्भालकर भी वह संभाल न सकी। उसने अनुभव किया कि चारों ओर अंधेरा है। निस्तब्धता, शून्य का साम्राज्य ! और वह अपने-आपको इसी का एक भाग समझने लगी। दिल की धड़कनें तेज़ होने लगीं। सोचने लगी—अकलमंद को इशारा ही काफी होता है। यदि मुझ पर ऐसी न गुज़री हुई होती, तो ये इस तरह उदास क्यों रहते ! क्यों मुझसे बार-बार ऐसा पूछते ? दरअसल मैं ही कलंकिनी, चुड़ैल, पापिन हूं। मुझे शादी करने का कोई हक नहीं था···उसने एक, ठण्डी आह भरी तथा कमरे से बाहर चली गयी।

रीता कुर्सी पर बैठ गई। आंचल का पल्ला मुँह पर ढांपकर रोने लगी। राजेन्द्र ने रोने का कारण पूछा, किन्तु उत्तर में उसने गरदन हिलाई। वह उसके सामने गया, किन्तु उसने छूने न दिया। उसने एक-दो बार पुकारा भी, वह सुबक-सुबककर रोने लगी।

'आखिर बात क्या है ?'—राजेन्द्र ने पूछा।

'कुछ नहीं, मुझे छुओ मत। मैं तुम्हारे लायक नहीं।'

'मतलब ?'

'मैं पतिता, पापिन, दागदार हूँ।'—रीता ने एक ही सांस में सब कुछ कह दिया।

राजेन्द्र एकदम चुप हो गया। रीता रोती रही। रोकर फिर बोल उठी—'मैंने आपके शरीर को अपवि[illegible] किया है। आपके साथ छल

करके शादी की है।'

रीता कहती गयी—'मैं अपनी गलती मानती हूँ। वह कमीना, हरजाई!'

राजेन्द्र को सब समझ में आया। वह अपने-आपको कोसता रहा।

'रीता, तुम्हारा अपराध क्षम्य है। मैंने भी ऐसा ही अपराध किया है, जो एकदम अक्षम्य है। मैं तो उसी के बारे में कह रहा था।'

'आप किसी लड़की की ज़िन्दगी से खेले हैं?'

'हां, खेला हूं।'

'क्या उस लड़की ने शादी कर ली है, या अभी कुंवारी है?'

'शायद कुंवारी ही होगी।'

'मैं उस लड़की को देखना चाहती हूं।'

राजेन्द्र पहले तो भयभीत हो उठा। किन्तु रीता के बार-बार आग्रह करने पर उसने आखिर नीला से मिलाने की ठान ही ली।

अस्पताल···

राजेन्द्र की कार अस्पताल के सामने रुकी। कार से उतरकर रीता ने फ्लैट के सहन में प्रवेश किया। वहां एक बालक जो सुडौल एवं सुन्दर था, उनसे पूछने लगा—

'आप कौन हैं?'

'हम नीला दीदी से मिलना चाहते हैं।'

'नीला?'

'हां नीला से।'

'नीला मेरी मां है।'

यह सुनकर राजेन्द्र के पांव तले की ज़मीन खिसक-सी गई। बार-बार बालक की ओर देखकर वेदना से उसकी आत्मा तल प्रदेश के ऊपर तक आलोकित हो उठी।

बालक फ्लैट के अन्दर जाकर मां को पुकारने लगा। कुछ क्षण पश्चात् एक स्त्री नीचे आई। वह नीला थी, जिसने राजेन्द्र की ओर मर्म-भेदी दृष्टि से देखा। रीता को सामने देखकर दोनों को फ्लैट के एक कमरे में बैठने को कहा। वहां [illegible]ने के बाद रीता ने नीला से कहा—

'मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूं, दीदी?'

'पूछो।'—नीला का दिल धक् से रह गया।

'तुम सचमुच एक देवी हो। त्याग की मूर्ति! दुर्भाग्य से मैं तुम्हारे तथा राजेन्द्र के बीच एक दीवार बनकर खड़ी हो गयी। उसी दीवार को तोड़कर मैं तुम दोनों की शादी करवाना चाहती हूं।'

'मतलब?'

'मतलब स्पष्ट है दीदी। प्यार की चरम परिणति है शादी। मैं तुमको इस मंज़िल तक पहुंचाना चाहती हूं।'

'आपका कहना किसी हद तक सही है दीदी। किन्तु जिस प्यार में संघर्ष न हो, घुटन की मीठी टीसें न हो, वह प्यार नहीं कहलाता। जिसको मेरी नहीं, बल्कि मेरी देह की ज़रूरत थी और ज़रूरत थी अपने अहंकार की तुष्टि की, उसके साथ मैं कैसे शादी कर सकती थी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैंने शादी नहीं की है।'

'किस से?'—रीता ने आश्चर्य से पूछा

'राजेन्द्र से'—नीला की आंखों में चमक फैल गयी।

'इनकी शादी तो मुझसे हुई है। तुम्हारे साथ प्रेम हुआ था न?'—रीता ने कहा।

'था नहीं, अब भी है। प्रेम को ही दिल की शादी कहा गया है।'—नीला की आंखों में फिर एक बार चमक-सी फैल गयी।

राजेन्द्र की आंखें झुक गयीं। रीता ने प्रतिवाद किया—'फिर इनके साथ क्यों नहीं रहती?'

नीला ने लापरवाही से उत्तर दिया—'लेकिन अब ये अपवित्र हो गये हैं न, क्योंकि इन्होंने तुमसे विवाह जो किया है। यदि मैं इनके साथ रहूं या विवाह करूं, तो मैं समझती हूं कि मैं झूठी एवं अपवित्र हो जाऊँगी, जिससे मैं स्वयं अपने प्रेम को गला घोंट दूंगी।'

राजेन्द्र के माथे की सारी नसें शिथिल पड़ गयीं, आंखों को फर्श पर गड़ाकर न जाने वह क्या टटोलता रहा।

नीला, सरिता के नीलवर्ण पानी [illegible] शान्त तथा कोमल! जीवन का एक निश्चित लक्ष्य लिये, एक मुक्त [illegible]नी!

नीला तथा रीता—कितनी सुन्दर हैं ये दोनों, फिर भी इन दोनों में काफी अन्तर है। एक उस मुक्त धारा के समान है, जो किनारे के साथ चलकर भी इसको पा नहीं सकी और दूसरी चंचल लहर की तरह है जिसने किनारा चाहा।

राजेन्द्र इससे आगे कुछ न सोच सका···

●

विश्वास

□

उस समय उषा घर पर नहीं थी, इसलिए खत को पढ़कर उसके माता-पिता को सुनाने के लिए मैं मजबूर-सा हो गया, क्योंकि इसका विषय ही कुछ ऐसा था, जो बाद में केवल उस तक ही सीमित नहीं रह सकता था। उसको सुनकर वहां सब लोग ठिठक से गये और अपना दैनिक काम-काज तत्काल छोड़कर, जैसे वे निश्चय ही न कर पाये कि उन्हें इसका दुःख कैसे मनाना है ! सब एक-दूसरे से कहने लगे—'कितना भंगुर है मनुष्य, कितनी काल्पनिक है दुनिया !'

किन्तु उनकी यह आवाज़ पानी में फेंके गये कंकर की तरह निस्तब्धता को तोड़कर दीवारों में डूब गयी। उषा की मां फर्श पर लेटी हिचकियां लेने लगी और बाप सबों की ओर देखता रहा, एक अपराधी की तरह, जैसे यह सब उसी ने किया था। उसकी आंखें एकदम गीली हो गयीं। वह भी रोना चाहता था, दिल का बोझ हल्का करने के लिए। न जाने क्यों ड़र-सा लग रहा था। मैं भी चौंक-सा गया। सोचा, यदि वह आ जाए तो ? कैसे कह दूं उसे कि ऐसा हुआ है ? और उसको मुझ से यह बात सुनने की आशा भी नहीं ! जो कुछ मैं सुनाता हूं, उसे वह विश्वास के साथ सुन लेती, चाहे कुछ भी हो ! उसने मुझे हर समय अपने इस गुण से प्रभावित किया है, किन्तु ऐसी बात सुनकर क्या वह मुझ पर विश्वास करेगी ?—मेरे मस्ति[illegible] ऐसे ही तरह-तरह के विचार

आये। समझ में कुछ नहीं आया, क्या करूँ! सोचा कि वहां से चला जाऊँ, किन्तु इस समय ऐसा मुनासिब नहीं समझा। मैं असमंजस में पड़ गया। खत को हाथ में लिए हतबुद्धि-सा थोड़ी देर खड़ा रहा। फिर सिर झुकाकर टहलने लगा। अचानक मुझे सात वर्ष पूर्व की वह सांझ याद आयी, जब यहां ऐसा ही एक खत आया था। हालांकि खत का विषय कुछ दूसरा था और लिखने वाला था उनका बेटा। बस, इतने ही गिने-चुने अक्षर—'मैंने विजय के साथ उषा का विवाह कर दिया। आपका रत्न, जम्मू।'

खत को पढ़कर उस समय भी यहां सब स्तंभित से रह गये। किसी को इस बात का गुमान न था कि उषा मां-बाप की मरज़ी के विरुद्ध शादी करेगी। खासकर उसकी मां को यह रिश्ता कभी मंजूर न था। उस समय वह क्रोध से कांपने लगी और लगभग चीखती हुई आवाज़ में मुझे बुलाया तथा खत को एक बार फिर पढ़कर सुनाने के लिए कहा! उसको विश्वास ही नहीं आया कि ऐसा हुआ है। अगले दिन वे दोनों बेटे के पास चले गये।

उषा उनकी लाड़ली बेटी थी और उसी ने उनके मर्म पर आघात किया। बेटे की शादी तो खाते-पीते परिवार की लड़की के साथ की थी। वह अच्छी जगह में लम्बी तनख्वाह पाता था। अब बची थी यह उषा, जिसने बचपन से ही पढ़ने-लिखने में कोई रुचि नहीं ली, क्योंकि उसके गांव में स्कूल होने पर भी लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का रिवाज़ नहीं था। उसने जीवन के सोलह वर्ष खा-पीकर गुड्डा-गुड्डी खेलने और घर के काम-काज में ही व्यतीत किये थे। दिल बहलाने के लिए वह घर की चारदीवारी से निकलकर भाई के पास गयी थी। यहां मां ने उसकी शादी तय कर ली थी। लड़का मास्टर था। अच्छे खानदान से संबंध रखता था; किन्तु जब मां-बाप ने बेटे को उषा की इस शादी के संबंध में पूछा तो उत्तर में वे यही बोले—'प्रेम की कानाफूसियों में कभी-कभी शादी भी संभव हो सकती है। इसको मैं कैसे टाल सकता था।'—बेटे की यह बात सुनकर मां-बाप कुछ न कह पाये, किन्तु उन्हें इस बात का दुःख था कि उसने इस आवा[illegible]ड़के से शादी क्यों की, क्यों दिन-रात

सबों की नज़रों में धूल झोंककर तरह-तरह के उपहार ले गई—कीमती साड़ियाँ, जड़ाऊ-ज़ेवर (जो अनपढ़ लड़कियों की कमज़ोरी होती है)। यदि सच माना जाये, मां-बाप को निजी तौर से इस शादी पर कोई आपत्ति न थी। लड़का थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा, अच्छे खानदान का था। दुःख केवल इस बात का था कि उसने रत्न के यहां नौकरी की थी। बरतन मांजे थे, बाज़ार में कोड़ी-फेरा करके सौदा-सुल्फ लाया था। घर की सफाई की थी, धोबियों की तरह घर के गंदे कपड़े धोये थे और सबसे बड़ी बात तो यह कि रत्न के दफ्तर में चपरासी भी रह चुका था। धीरे-धीरे अथक परिश्रम और थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा होने के कारण वह क्लर्क के पद पर पहुंच गया। खाकी वर्दी के बजाय कोट-पतलून पहनने लगा। रत्न के घर पर उसका आना-जाना रहा। अबकी बार इस घर में आंखों के सामने सुन्दर सपने आये। सपनों में एक सुन्दर आकृति आयी और धीरे-धीरे दिल में समा गई। जब साधन साथ हों तो मनुष्य क्या कुछ नहीं कर सकता! वह चाँद और सूर्य पर चढ़ सकता है। फिर उषा में ऐसी कौन-सी कमी थी! वह तो इसी धरती की चन्द्र थी और स्त्रियाँ हैं भी इसीलिए! वे सुन्दर हों, सांसारिक शिष्टता से अवगत हों और पति को खुश रखने की योग्यता रखती हों, तो अच्छे-बुरे लड़के आ जाते हैं और उन्हें ब्याह लाते हैं। विजय में भी कोई ऐसी कमी नहीं थी। वह भी एक हट्टा-कट्टा नौजवान था, सुन्दर था। पाँच-छः सौ मासिक वेतन पाता था—यह सब बातें उषा के मां-बाप अच्छी तरह जानते थे। फिर भी न जाने क्यों उनके दिल में कौन-सी गांठ बंधी थी जो खुलने ही न पाती, कहते हैं, मां-बाप का आशीर्वाद ही बेटी की सुख-शांति का सूचक होता है, किन्तु जब मां-बाप ही बेटी पर नाराज़ थे, तो उसे आशीर्वाद कैसे नसीब होता—एकाएक मेरे कांपते हाथों से वह खत गिर पड़ा और मैं उसको उठाकर एक बार फिर पढ़ने लगा।

अभी मेरी निगाहें खत की ओर ही लगी थीं कि मुझे पता ही न चला कि उषा मेरे पास कैसे आ धमकी। मां-बाप उसका मुंह तकने लगे। कैसा पासा पलटा था। वह भी ज़माना था जब उषा के नाम पर ही भड़क उठे थे। उस दिन सबों ने समझाया-बुझ[illegible]या कि 'कौन-सी गलती की

उषा ने ।' मनचाहे लड़के के साथ शादी करना तो कोई पाप नहीं, लड़का अच्छा है, कमाऊ है। हमें यह नहीं देखना कि पहले वह क्या था, हमें यह देखना है कि इस समय वह क्या है; किन्तु वे नहीं माने थे आखिर बेटे ने ही सब कुछ ले-दे दिया।

पाँच साल बाद उषा खुद ही मायके आ पहुंची और मां के गले से लिपटकर रोने लगी। उस समय मां एकदम अपना गुस्सा भूल गयी और हर एक के सामने दामाद की प्रशंसा के पुल बांधने लगी ! किन्तु धीरे-धीरे बात खुल गयी कि उषा विजय के साथ झगड़कर यहां आयी है क्योंकि उसने क्लर्की छोड़ दी है और फौज में भर्ती हो गया है। वहां वह हवलदार हो गया है। यह भी उसके भाग्य का ही फेर था कि नौकर से चपरासी, चपरासी से कलर्क और कर्लक से हवलदार हो गया। वह प्रायः उषा को कहता कि जीवन संघर्ष है। जो मेहनत करता है, वह क्या न पाता —अच्छा घर, अच्छी पत्नी, पैसे, मान सब कुछ ! किन्तु इस खबर ने यहां सबों को झिंझोड़ दिया। स्वयं उषा विजय की यह नौकरी नहीं चाहती थी। उसने विजय को चाहा था तथा इसके लिए उसको भी संघर्ष करना पड़ा। वह विरहिणी के रूप में नहीं जीना चाहती थी बल्कि संगिनी बन कर मरना चाहती थी। किन्तु विजय ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाकर पत्नी को खुश रखना चाहता था। इन्हीं बातों से पति-पत्नी में अनबन हो गयी ! परन्तु इसको एक वर्ष भी न बीता था कि विजय अचानक आ धमका। वह फौजी वर्दी में था। उसको देखकर ही उषा का दिल धक्-धक् करने लगा। वह उससे एक बात भी नहीं करनी चाहती थी, किन्तु उसको देखकर ही न जाने वह कैसे मोम की तरह पिघल गई और उसकी तरफ से सबों को सफाई देने लगी।

दो महीने इसी प्रकार बीत गये। दरअसल विजय छुट्टी पर आया था उसको फिर फ्रंट पर जाना था। उषा ने उससे यह नौकरी छोड़ने के लिए विनती की, मगर वह नहीं माना और यह कह कर टाला कि फौजी नौकरी बहादुर ही कर सकते हैं। मुझे गर्व है कि तुम बहादुर की पत्नी हो। जो देश के सीमाओं की रक्षा करता है।'और फिर एक दिन मैंने उषा के मां-बाप को एक और खत [illegible] सुनाया—'विजय फ्रंट पर चला गया

है। उषा मेरे पास आयी है।—आपका रत्न।'जैसे यहां इसी खत की लम्बी प्रतीक्षा थी। बाप ने कहा—'उषा की मां ! न जाने अभी हमें कौन से बुरे दिन देखने हैं। भाई के पास कब तक रहेगी वह बेचारी !'—और तब से आज लम्बे-लम्बे तीन वर्ष बीत गये। उषा मायके आयी। यहाँ उसकी जिन्दगी का ढर्रा अजब, उलट-पलट दिखाई दिया उसका यौवन उल्लास, एवं रंगीनियों से बिछड़ गया। वह जीवन की फुलवारी में अकेला-पन महसूस करने लगी, किन्तु जब कभी वह फ्रंट से विजय का खत पाती तो खुशी से मचलकर मेरे पास आती, मुझसे खत पढ़वाती तथा उत्सुकता से सारी खबर सुन लेती। उसको मुझ पर विश्वास था। जो कुछ भी मैं सुनाता था, विश्वास के साथ सुन लेती।

तब से मैंने उषा को विजय के कई पत्र पढ़कर सुनाये—एक पत्र में लिखा था—'तेरी आकृति सपनों में बार-बार आती है। तुम एक ऐसी सुन्दर प्रतिमा हो, जिस पर बचपन से ही हृदय आसक्त था। आंखों में ठंडक भर देने तथा दिल के फूल की तरह खिलने के लिए मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ, जब घर आकर तुम्हारे दर्शन कर सकूं।' दूसरे पत्र में लिखा था—'उस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करता रहा। तुम्हें देखने के लिए दिल मचल-मचल जाता है किन्तु हालात मुझे तुमसे मिलने नहीं देते। इस समय मैं करगिल में एक चौकी की रखवाली करता हूँ। दुश्मन के इरादे नेक नहीं। क्या पता, कब वह हमारी पुण्य भूमि पर हमला बोल देगा।' ऐसा ही एक और पत्र—'इस समय हमारे देश की स्थिति चिंताजनक है। मानवता का दम भरने वाला हमारा दुश्मन अपनी ही जनता को मारकर लाशों के ढेर खड़ा करता है। लाखों के सुहाग छिन गये हैं। सिसकते और बिलखते बच्चे दम तोड़ रहे हैं। क्या पता, इस नर-संहार को रोकने के लिए हमें भी तोपों के दाहनों में कूदना पड़े। सीमाओं की रक्षा के लिए हमारी जानें जायेंगी। उनमें मेरी गिनती होगी अथवा नहीं, कौन कह सकता हैं, किन्तु मुझे पूरी आशा है, यदि मैं तुम्हारे पास आऊंगा तो रणक्षेत्र से विजय प्राप्त करके ही आऊंगा मेरी विजय तुम्हारी विजय है, सारे राष्ट्र की विजय है। भगवान से दिन-रात ऐसा ही मांगो।'

इन बातों को सुनकर उषा पहले डर गई, किन्तु मैंने उसको यह कह कर तसल्ली दी कि डर की कोई बात नहीं। अभी लड़ाई शुरू नहीं हुई है। दिल रखो, हिम्मत हारने का कोई कारण नहीं। सब कुछ ठीक हो जाएगा। तो फिर यह क्या हो गया, क्यों हो गया, कैसे हो गया। विधि ने कैसे यह चक्कर चलाया। सारे गांव में बादल के फटने की सी आवाज़ सुनायी दी, सब बौखला उठे। दुश्मन के सैबर जैट हवाई अड्डे पर आग के गोले बरसाने आये। दुश्मन ने देश पर धावा बोल दिया और चौदह दिनों की इस लड़ाई में हमारे देश ने दुश्मन को पराजित करके अपनी आज़ादी की रक्षा ही नहीं की, बल्कि एक नये देश को दुश्मन की तानाशाही, घुटन और शोषण की कड़ियों से आज़ाद करके स्वतन्त्रता की पायल पहनायी तथा सत्यमेव जयते सिद्ध कर दिखाया। इस अवसर पर लोगों ने खुशियां मनायीं, नाचा-गाया, किन्तु मेरा सिर चकरा रहा था। मैं सोच भी नहीं सकता कि इस खुशी की बेला में ऐसा भी होगा। और यदि ऐसा हुआ है तो मैं इसकी खबर कैसे दूं, कैसे कहूँ ऐसा हुआ है।

और एकाएक उषा को सामने देखकर मैं बुरी तरह चौंक गया। किन्तु जब उसने मेरी ओर देखा तो वह हंसी। मैंने निगाह उठाकर उसकी ओर एक बार फिर देखा। मेरी आंखों मे आंसू थे। मेरे हाथों से खत छूटकर गिर गया। सारा शरीर थर-थर कांपने लगा। उसके मां-बाप भी कुछ बोल नहीं पाये। घर की चुप्पी टूटकर भी नहीं टूटी। सब एक दूसरे की ओर देख रहे थे, जैसे नज़रों ही नज़रों में एक-दूसरे से कुछ कह रहे थे। आखिर उषा ने मुझसे पूछा—'किसका खत है यह ?' उसने खत को उठाया और इस पर लिखे एक-एक शब्द को टटोलने लगी। वह इसे पढ़ना चाहती थी, किन्तु उसका अक्षर-ज्ञान नहीं के बराबर था। उसने अपने-आपसे बुदबुदाया—' क्या लिखा होगा, वही रोज की बात कि पढ़ने वाला मेरी उषा को खूब-खूब प्यार कर दे और कह दे लड़ाई में उसके विजय की विजय हो गयी है।'

उसने खत को मेरी ओर बढ़ा दिया तथा उत्सुकता से पूछने लगी—'क्या लिखा है, पढ़ो न !' वह अधिक उत्सुकता प्रकट करती हुई मेरे पास आ गयी !

मैं चुप रह गया। क्या कहूँ उसे ? शब्द मुह में खोये जा रहे थे।

'खत तो उन्हीं का है न ?' उसने फिर पूछा

'हां'—मेरा छोटा-सा उत्तर।

'तो क्या घर आने का कोई समाचार दिया है ? कुछ कहो न। मुझे तुम पर विश्वास है।'—वह और उत्सुकता से पूछने लगी।

'नहीं,ऐसी बात नहीं'—मैंने धीमे स्वर में कहा।

'तो फिर क्या बात है ? कब आयेंगे ? शायद मुझे वहीं आने को लिखा हो ?'—वह फिर उसी उत्सुकता से पूछने लगी।

मैं उसके इन शब्दों से और आहत हो गया। अबकी बार मैंने खत को मोड़कर उसके हाथों में देते हुए कहा—'उषा ! वे लड़ाई में वीरगति पा गये हैं।'—और यह कहकर मेरा सिर झुक गया। उसने चीखने की-सी आवाज़ में कहा—'क्या कहा, वीरगति पा गये हैं ?

'हां, यह विजय का खत नहीं, सरकार का खत है। हेडक्वार्टर से उनका सामान भी आया होगा। उसको छुड़ा लेने का आदेश है'—मैंने रूमाल से आंसू पोंछकर कांपती हुई आवाज़ में कहा।

'नहीं, ऐसा नहीं हुआ है, मुझे तुम पर विश्वास था किन्तु यह खबर सुनने का गुमान भी नहीं करती थी'—वह उसी चीखती हुई आवाज़ में पीछे की ओर हट गयी। उसकी आँखें फैल-सी गईं। उसने खत को दायें हाथ की मुट्ठी में ज़ोर से कस लिया। उसके चेहरे का रंग एकदम फक् पड़ गया।

'अब मेरा क्या होगा ?' वह मानो शून्य से पूछने लगी। 'मैं उसके सामने सिर झुकाये खड़ा था बुत की तरह। उस समय मेरी आंखों के सामने उषा थी, उसकी मां थी और बाप था।

वह फर्श पर पागलों की तरह लेट गई। हाथ की मुट्ठी से खत एकाएक गिर गया तथा नीचे हलकी हवा के साथ फड़फड़ाया। मैं उसकी ओर देखता रहा, क्योंकि मैं और कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। एक क्षण पहले के उसके उत्सुक प्रश्न, उसका फूल सा खिला हुआ चेहरा ! और एक क्षण बाद सदियों जैसी बरडोरी यह मौत की उदासी। वह कुछ नहीं कहना चाहती और कह भी नहीं पाती थी केवल मेरी ओर देख रही थी, जैसे उसको मुझपर विश्वास ही न रहा हो।

बरसात

□

वह यहां से चली गई, आज सात दिन हो गये—

कल जब अचानक उसको लालचौक में किसी पराये मर्द के साथ हाथ में हाथ मिलाकर चलते हुए देखा, तो मैं चौंक-सा गया। उसने मेरे उस संस्कार पर मानो एकदम हमला किया। सद्या-विवाहिता होकर वह इस प्रकार एक अपरिचित के साथ···यह क्या है ? न-न, ऐसा कभी नहीं हो सकता—मेरे मुँह से एकदम निकल गया। दूर से मैंने उसकी ओर एक बार फिर देखा। हां, यह वही थी। वही ! इसके बारे में अब कोई सन्देह नहीं। लम्बे-लम्बे डग भरती हुई, अब वह दायें की ओर मुड़कर आंखों से ओझल हो गयी, तो मेरे कदम कुछ क्षणों के लिए रुक गये। सोचने लगा, जो राह उसने अपना ली है, उसका अन्त कितना वीभत्स होगा, शायद ही उसको इसकी कल्पना हो ! मन में बार-बार आया कि उसके पीछे चलूं तथा कहीं पर रोककर पूछूं कि यह क्या माजरा है ! कौन है यह तेरे साथ बेशर्म ! किन्तु विकल्प ने आज्ञा नहीं दी, क्योंकि वह मुझसे झगड़ा करके चली गयी थी।

हम दोनों में झगड़ा होना कोई नयी बात नहीं थी। मेरी समझ में नहीं आता कि हम किस बात पर झगड़ा करते और फिर अपने-आप किस तरह सुलह होती। अलबत्ता यह बात तो ज़रूर है कि यदि मुझे उसके साथ पटर-पटर बातों के महायुद्ध में पराजय होती, तो मेरा हुलिया एकदम

तंग हो जाता। मैं उसके साथ बोलना ही बन्द कर देता। दोपहर या शाम का खाना भी नहीं खाता, उस दिन। और यदि उसकी हार होती तो वह दो-तीन दिन मायके चली जाती। पति-पत्नी के झगड़ों में प्रायः पत्नी का पति को किसी-न-किसी प्रकार तंग करने की भावना प्रबल रहती है। किन्तु यह एक ऐसी आग है, जो उनके सीने में जलती है। कुछ समय बाद यह अपने-आप बुझती और जब यह पूरी तरह ठंडी पड़ जाती तो वह अपने-आप घर वापस आती। कहती—'खाना खाया ?'

'क्यों नहीं खाता ! भूखा मरता क्या ?'—मेरा गुस्से में उत्तर।

'किसने पकाया या सुरेन्द्र के घर पर ?'—उसका इस तरह कहने में व्यंग्य होता।

'वहां क्यों खाता ! मुझे भी पकाना आता है।'—मेरा उत्तर।

'वह मैं जानती हूँ। जानती हूँ जिसके हाथों बर्तन खिसककर नीचे गिरे और टूट जाये, वह क्या खाना पकायेगा !'—यह कहकर उसके मुँह से हंसी का ज़ोरदार कहकहा फूट पड़ता।

उसका यह कहना तो सत्य था। खाना पकाने की कला सीखने में मैंने आज तक कोई दिलचस्पी नहीं ली थी। दरअसल मौका ही न मिला इसको सीखने के लिए आज तक। और जब कभी वह मायके चली जाती, तो मुझे सुरेन्द्र की पत्नी रीता खाने के लिए बुलाती। बात को काटकर मैंने कहा—'चाय का एक कप दोगी ? ज़रूरी काम है।'

और यही चाय का एक कप पीकर मैं उस दिन चार बजे घर से बाहर चला आया। वापस लौटने में इसलिए देर हुई, क्योंकि मित्र सुरेन्द्र की पत्नी ने आज भी शाम का खाना वहीं खाने को कहा था। पहले वहां जाने का विचार नहीं था। किन्तु बाद में सोचा, आपत्ति भी क्या है ! बेचारी कैसा आतिथ्य-सत्कार करती है और यदि आज मैं वहां न जाऊं तो कहेगी कि कैसा इन्सान है यह ! बिन बुलाये आता है और जब बुलाया तो किस प्रकार टाल गया।

मैं दस बजे घर पहुँचा वह मेरी प्रतीक्षा में थी। कब आयें और कहा

—उसका यह तीर-सा व्यंग्य।

'यह क्या कह रही हो तुम ? किसी पर निराधार शक लाना ठीक नहीं रहता।'—मैंने समझाते हुए कहा।

'खैर, छोड़ो अब इन बातों को। इस ओढ़नी में खूबसूरत लगते हो !' उसने हंसी में कहा।

'यहाँ क्या था ओढ़ने के लिए, गधे की खाल !' मैंने फिर जल भुनकर कहा।

'गधे की खाल क्यों ! पास वाले कमरे में मैंने बिस्तर जो लगाया है। वहीं सोयेंगे, चलो।'—अबकी बार उसने बड़े प्यार से कहा।

'यह सुनकर जाने क्यों मैं कुछ न कह सका। मैं एकदम गूँगा-सा हो गया। केवल उसकी ओर प्यार-भरी नज़रों से देखता रहा। और वह—वह भी मेरी ओर कुछ क्षण के लिए ऐसे ही देखती रही।

अब लगभग पांच वर्ष ऐसे ही बीत गये। इस कालावधि में हमने आपस में कितनी बार झगड़ा किया और कितनी बार हमारी सुलह हो गयी—इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ये पांच वर्ष वस्तुतः स्मृति स्वरूप घटनाओं का एक खज़ाना पीछे की ओर छोड़ गये हैं। किन्तु पिछले सात दिनों से जो बहाना बनाकर वह मायके चली गयी है, उसके लिए किसी हद तक मैं अपने-आप ज़िम्मेदार हूँ। मगर मैं क्या करता ! उस समय मैं मजबूर हो गया। क्या पता था मुझे कि उषा के साथ बात करना इतना महंगा पड़ जायेगा।

उषा को मैंने 'बेंड' पर शॉपिंग करते देखा। हम भी वहां शॉपिंग करने गये थे। इसको अपने लिए एक नई साड़ी लानी थी। पहले वह कई दुकानों पर अपनी पसंद की चीज़ देखने गयी। दुकानदारों से उसका मूल्य आदि पूछती रही। अंत में एक दुकान पर उसने एक साड़ी पसंद की। दुकानदार ने उसको तहकर लिफाफे में रखा। इसके बाद उसने उसको कुछ छूट देने के लिए कहा। मगर दुकानदार का कहना था कि उसको यह बेचकर एक पैसा भी लाभ नहीं कमाया है, किन्तु वह भी अपने

बात पर अड़ी रही। वैसे बात तो कुछ नहीं। मात्र दो रुपयों के लिए इतना शोर ! चख-चख ! इसी प्रकार पंद्रह-बीस मिनट बीत गये। मैं बोर हो गया उनकी इन बातों को सुनकर। इतने में, मेरे कानों में यह आवाज़ गूंज गयी। 'क्योंजी, तुम क्यों आँखें फेर रहे हो ? पहचाना नहीं ?'

मैं चौंक गया। पीछे की ओर जब देखा, तो यह उषा थी। लगभग पांच-सात वर्ष बाद मैंने आज फिर उसको देखा। पांच साल पहले का उसका यौवन ! हूर-परी-सी दिखती थी वह ! और आज·· आज कमजोर हो रही थी। सूखी मछली ! मैंने उसकी ओर हाथ जोड़कर कहा—'नहीं, आँखें क्यों फेर लेता। दरअसल बात यह है कि मैंने तुमको पहचाना ही नहीं।'

'अभी केवल सात साल ही हुए हैं मेरी शादी हुए। बस, इन्हीं कई सालों में मुझमें कुछ 'चेंज' आ गयी !'—उसने यह सब हंसी में कहा—फिर बात को टालकर मैंने कहा—'अच्छा सुनाओ, हाल क्या है ? चंगी तो हो ? यहां कब आयी हो ? वापस कब जाना है ?'

'यहां मैं कल आयी, आठ दिनों के लिए'—उसने कहा।

'अच्छा, तो फिर भेंट होगी, यदि भगवान ने चाहा। इस वक्त ज़रूरी काम है'—मैंने उसकी ओर देखा और उसको मेरे इस तरह के व्यवहार से आश्चर्य हुआ।

हमने उससे विदा ली और घर की ओर चल दिये। रास्ते में उसने मेरे साथ एक बात भी नहीं की। मैंने भी उससे नहीं पूछा कि तुमको एकदम यह क्या हो गया। अभी तो बुलबुल की तरह चहचहा रही थीं और देखते ही देखते गूँगी क्यों हो गयीं। जब हम घर पहुंचे, कहने लगी—'वह कौन थी जो अभी-अभी 'बेंड' पर मिली थी ?'

'दोस्त की पत्नी, जो इस समय कलकत्ता में इंजीनियर हैं—मैंने कहा।

'दोस्त की पत्नी, या तुम्हारी···।' उसका तीर-सा व्यंग्य।

'कैसे बातें करती हो तुम ! इतनी शक्की !'—मेरी झनझनाती आवाज़।

'शक्की नहीं हूं, बल्कि मैं औरत को अच्छी तरह जानती हूं। यह वही

है न जिसके पति ने हमारे मुहल्ले के सर्वानन्द के बेटे की शादी में किसी पराये मर्द के साथ पकड़ा था—और यही तुम्हारी 'फ्रेंड' है।'—उसने गुस्से में कहा।

'तुम्हारा सिर। क्या बकती हो! इससे बढ़कर किसी शरीफ औरत को मैंने आज तक देखा नहीं है।'—मेरा उत्तर था।

'तुमको यह शरीफ लगेगी। इसके क्या कहने! यह तो तुम्हारी फ्रेंड है न।'—उसके कहने में व्यंग्य था।

यह सुनकर मुझे बहुत गुस्सा आया। एकदम बोल उठा—'दफा हो जाओ यहां से! तुम क्यों मुझ पर बात-बात में शक करती हो! मैं तो छोटा बच्चा नहीं कि तुम मुझे बात-बात पर चिढ़ाती रहोगी।'

मेरा इतना ही कहना था कि उसका चेहरा तमतमाया। वह कमरे से बाहर आयी। मैं कमरे में अकेला रह गया। कुछ क्षण बाद उठा। अचानक मेरी नज़र दीवार के साथ लगे हुए फोटो पर पड़ी। यह वही फोटो था जो मैंने उसके साथ शादी से पहले लिया था। बैसाखी का त्यौहार! इस दिन यहां मुगल बागात सैलानियों से भरे रहते हैं। हम भी इस दिन निशात बाग गये थे और यह फोटो हमने वहीं लिया था। उस दिन हमने वहां बहुत से फोटो लिये होते किन्तु अचानक वर्षा शुरू होने के कारण ऐसा संभव न हो सका। वर्षा के कारण वहां सब खाने-पीने का सामान समेटकर बस-अड्डे की ओर चल दिये। हम भी घर जाने के लिए तैयार हुए। वर्षा के कारण हमारे कपड़े भीग गये तथा ठंड से सारा बदन थरथराने लगा। फिर भी मुझे उस समय आनन्द आया। बहार की वर्षा अगर थमती नहीं, तो भी यह कोई हानि नहीं पहुंचाती। यह यहां के पेड़-पौधों में एक जीवन-संचार करती है। इससे हरियाली विकसित होती है तथा यह धन-धान्य का प्रतीक मानी जाती है। मैं यही सोच रहा था कि बाहर से बिजली चमकी, गर्जन हुई तथा क्षण भर के लिए सारा वातावरण जगमगा उठा। फिर ज़ोरों की वर्षा हुई। टिन की छतों से तड़ातड़ वर्षा का शोर सुनकर ऐसा लगा कि बाहर गोलाबारी हो रही है; किन्तु यह बहार की वर्षा नहीं थी, बल्कि बरसात में बरसने वाली फुहार! इसका पता नहीं चलता, कब यह शुरू हो जाये और कब थम जाये। इससे मुझे

भय-सा होने लगा,। सोचने लगा, यदि यह थमे तो वितस्ता में बाढ़ आयेगी और खड़ी फसल—जिसको किसानों ने अब तक प्यार की बूंदों से सींचा है, नष्ट हो जायेगी। ठंड से मेरा बदन थरथराने लगा। मैं अपने 'बेड' पर लेट गया। बत्ती को बुझाकर मैंने सोना चाहा किन्तु नींद नहीं आयी। न जाने मुझे स्वयं के प्रति धिक्कार की भावना का सा उदय क्यों हो गया। सोचने लगा, कितना महंगा पड़ गया आज उषा के साथ बातें करना और उस दिन भी कितना शोर मच गया, जब वह मुझे वहां पहली बार मिली।

उस दिन, हां उसी दिन! आज से लगभग सात वर्ष पूर्व। उस दिन सर्वानन्द के बड़े बेटे गाशा की शादी का पहला दिन, यानी 'मेंहदीरात' थी। गाशा मेरा मित्र है और उस दिन वहां मैं एक अतिथि के रूप में नहीं। मैं वहां कुछ काम करने के लिए गया था।

उस दिन का एक खास कार्यक्रम था अतिथि महिलाओं को शाम का खाना खिलाना। खाना खाने से पहले सब महिलाएं शामियाने में दो टोलियों में बंटी थीं। ये 'वनवुन' (कश्मीरी लोक-गीत) का गायन कर रही थीं। इन सभी का आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु था एक विशेष चेहरा—नववधू। वहाँ सभी का खिंचाव उसी की तरफ था। मैंने भी उत्सुकता-वश उसकी ओर देखा। सुन्दर थी वह। कड़कती बिजली-सी। सांवला रंग, ललाट पर टीका झुल रहा था उसके! आंखों में चचलता थी। वह एक ज्वाला थी जिसकी जलन से सभी को आनन्द होता। उसको देखकर मृत हृदय भी सजीव हो उठते, फिर हम सब तो वहां तरुण ही थे। वहाँ ऐसा महसूस हो रहा था कि आज स्वर्गपुरी से किसी अप्सरा ने सर्वानन्द के घर में प्रवेश किया है और वहां उसी को नाचना और गाना है। पहले मैंने भी आशिकों की आशिकी में बढ़-चढ़कर भाग लिया। इस बीच नववधू ने कई बार मेरी ओर देखा। आंखें चमकाकर तथा एक अजीब-सी ख़ुशी का इज़हार कर जब वह मेरी ओर बार-बार देखने लगी तो मेरा रोम-रोम रोमांचित होने लगा। मैं अपनी दृष्टि फेरने की

कोशिश करने लगा, पर उसकी दृष्टि बार-बार मन में गडने लगी। मैं आशिकों की इस टोली से एकदम अलग हो गया। सोचने लगा कि यह मेरी ओर ऐसे क्यों देख रही है ? क्या यह मुझे जानती है ?'

मैं रसोई की ओर चल दिया। इतने में शमियाने की महिलाओं को खाना खिलाने की व्यवस्था हुई। मुझसे कहा गया इन सबके हाथ धुलवाने के लिए। मैंने पानी का जग लिया; फिर अतिथि महिलाओं ने एक-एक करके हाथ धो डाले। अंत में नववधू की बारी आयी। उसके कोमल हाथों पर पानी उंडेलने में न जाने मुझे क्या हो गया। दिल की धड़कन इतनी तेज़ हो गयीं कि आंखों से यह दिखायी ही न दिया, कि नववधू कहां है ! शरीर में थरथराहट होने के कारण मेरे हाथों से पानी का भरा जग खिसक गया। इससे नववधू की साड़ी का पल्लू भीग गया और छींटें उठने से उसका मुँह तरबतर हो गया। इससे अजीब-सी हलचल पैदा हो गयी वहां। मैं बहुत शर्मिंदा हो गया। पीछे आशिकों की टोली ने एक अजीब-सा कहकहा मारा जिससे मैं और भी पानी-पानी हो गया। सोचने लगा, यदि यह मुझे पांव की जूती निकाल कर पीटेगी तो उस समय मेरी क्या हालत होगी ! कैसे समझाऊँ इसे कि मैंने ऐसा जान-बूझकर नहीं किया ! मैंने नववधू की ओर देखा। डर था कि मुझ पर ज़रूर बरसेगी ! किन्तु कुछ क्षण बाद उसने अपने रूमाल से मुँह पोंछ लिया। मैंने उसकी ओर एक बार फिर देखा, उसने भी मेरी ओर देखा और हंस पड़ी।

यह देख मैं आश्चर्यचकित होकर रह गया। उसकी इस हंसी में न जाने क्या जादू था कि इसने मेरे मन पर काबू पा लिया। मैं बेकरार-सा होने लगा। मुझे अब कहीं भी बैठने को दिल नहीं करता। इतने में मैंने सब पता लगा लिया। नववधू का नाम है उषा। बान मोहल्ले में रहती है। वहीं से यहां आयी है। यह एक इंजीनियर की पत्नी है। उनको भी मैंने देख लिया। बहुत सुन्दर चेहरा ! उम्र पच्चीस-तीस साल ! शान्त प्रकृति के लगते थे किन्तु ज़रा गम्भीर भी। बातचीत नहीं हो पायी उनके साथ क्योंकि किसी ने परिचय नहीं कराया। साथ वाले कमरे में बैठे थे ये साहब और शायद छकरी-संगीत का रस लूट रहे थे। मैं भी

इस कमरे में गया और वह संगीत सुनने लगा। किन्तु उस समय मुझे यह नीरस-सा लगा। जाने मेरे दिल की धड़कन क्यों तेज़ होने लगी। ऐसा महसूस हुआ कि अभी-अभी हार्ट-फेल हो जायेगा। मैं उठा और मकान की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर एक अन्धेरी कोठरी में आ घुसा। वहां निस्तब्ध वातावरण था। दिन भर की थकान और फिर यह ग्लानि ! मुझे एक अजीब प्रकार की कमज़ोरी-सी महसूस हो रही थी। इस समय मेरा सारा सोच-विचार, सारी कल्पना तथा सारी भावनाओं का केन्द्र-बिन्दु थी उषा ! कुँवारी युवतियों के प्रति मन में आकर्षण तो ज़रूर था किन्तु विवाहिता नारी के प्रति मन प्रवृत नहीं होता था। खासकर वह नारी जो 'डेजहोर' पहनी हो, उससे मैं कोसों दूर रहता ! किन्तु ऊषा ने मेरे मन को जिस तरह बे-काबू कर लिया, उसको अब फिर से काबू में लाना मुश्किल सा दिखता था। मैं बेचैन-सा हो गया। कुछ नहीं सूझा, क्या करूं ! मैं इस अन्धेरी कोठरी में यों ही लेट गया। साथ लगे तकिये पर जब मैंने सिर रखा तो कुछ समय के लिए मेरी आंखें लग गयीं—

शायद उस समय रात्रि का दूसरा पहर था—

मैंने अपने चेहरे पर किसी के मरमरी हाथों का स्पर्श महसूस किया। फिर किसी ने मुझे जगाया। में एकदम चौंक गया। ठिठका और मुड़ा। जब मैंने अपने हाथ उठाये तो मुँह से एकदम निकला—'कौन ?'

'मैं हूं, उषा। घबराये नहीं।'—उसने इस तरह कहा जैसे वह मुझे कई कई सालों से जानती थीं।

'तुम, तुम यहां किसलिए···?'—मैंने घबराते हुए पूछा

'कुछ नहीं—यह कहते हुए वह मेरे और करीब आने लगी। कहा—क्या कर रहे हो यहाँ ! इस काल कोठरी में इस तरह···। मैं तुम्हें नीचे ढूंढ रही थी।'

'नीचे क्या करूंगा मैं ? मुझे नींद आ रही है।'—मेरा उत्तर।

'तो मैं भी यही रहूंगी, यहीं सोऊंगी।'—वह दरजवाब बोली। उसकी इन बातों को सुनकर मैं आश्चर्यचकित होकर रह गया। मैं तो उसको जानता नहीं। न उसके साथ मेरा कोई दूर का रिश्ता है और यह क्या कह रही है ? यह कैसी औरत है ? लगता है या तो यह बदमाश

(चरित्रहीन) है या पागल। ऐसा भी हो सकता है कि यह मुझे अपने बदचलनी के जाल में फंसाना चाहती हो। मैं यही सोच रहा था कि वह बोली—'चुप क्यों हो गये ! बताओ नीचे नहीं आओगे ?'

'नीचे आकर मैं क्या करूँगा ?'—मैंने कहा।

'मेरे साथ कुछ काम है—वह मेरे बहुत करीब आयी और अपना मुंह मेरे कान के पास लाकर बोली—'यहां अनुकूल जगह नहीं है। क्या समझे !'

मैं चौंका—'यह क्या कहती हो तुम ?' मुझसे तो···

उषा हठात ज़ोर से हंसी। बोली—'क्या समझे तुम ! हम तो कोई अपराध करने नहीं जा रहे हैं। मैं तो चाहती हूं, केवल एक···

फिर भी मैं कोई अनुकूल उत्तर न दे सका।

उसने मुझे हठात पकड़कर खींचा बोली—'क्या सोच रहे हो ?'

मैं चुप रहा। कोई निश्चित उत्तर न दे सका।

मेरी इस चुप्पी से वह जल-भुन गयी। फिर उच्छ्वास फेंककर वह एक ही सांस में बोली—'कायर।'

यह सुनकर किसी ने मानो मेरे मुंह पर चांटा मारा। मुझे स्वयं को धिक्कारने की सी तबीयत हुई। सोचने लगा, जो साहस एक औरत में है, वह मुझमें नहीं ! सच कहा इसने कि मैं कायर हूँ।

इस बीच पता नहीं कि कौन इस अन्धेरी कोठरी के दरवाज़े पर खड़ा हो गया। इस निस्तब्ध, परित्यक्त तथा अन्धेरे कमरे में हम दोनों का चेहरा साफ नहीं दिख रहा था और इस आदमी का मुंह हम कैसे देख सकते थे !

इतने में उसने माचिस की एक तीली जलायी।

कुछ क्षण के लिए जलती हुई तीली का प्रकाश इस अन्धेरी कोठरी में आ फैला। उस समय मैं पागल नहीं हुआ था। दरअसल पहल उसी की थी। यदि किसी उन्माद के अधीन मैंने उसे खींचकर अपनी बांहों में भर लिया था, तो इसमें मेरा क्या दोष ! मेरे स्थान पर यदि कोई दूसरा होता तो विपथ हो जाता, फिर भी मैं सुध में था। उस आदमी को मैंने अच्छी तरह देख लिया। वह उषा का पति था।

'यहां क्यों इतना अन्धेरा है ! लैम्प क्यों नहीं जलाया ! यह कौन तुम्हारे सामने···।' उषा के पति ने एक ही सांस में सब कुछ कहा।

उषा एकदम उठ खड़ी हुई और रंग उड़े चेहरे से बोली—'ये··· बाईगाशा के हैं न !···इन्हीं को बुलाने आयी थी।'

इतने में उषा के पति ने माचिस की दूसरी तीली जलायी। कोठरी में प्रकाश फैलाकर उसने मुझे ध्यान से देखा।

मेरे दिल की धड़कन तेज़ होने लगी। मैं अपने को हिला ही न सका। जलती तीली बुझ गई और कमरे में फिर अन्धेरा छा गया। कहीं वह मुझे मार-मार कर मेरा भुरकस न निकाले ! सबसे बढ़कर मुझे इस बात का डर हो गया कि कहीं वह यह बात किसी न कह दे ! मेरी ख्वाम-ख्वाह बदनामी होगी। पहल तो उसी की थी। मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं किया। न जाने उसने क्या सोचा होगा—मेरे दिल में ऐसे ही ख्याल पैदा हुए। जलती तीली जब पूरी बुझ गयी, तो वह सीढ़ियां उतरते नीचे आया। उषा भी उसके पीछे-पीछे चली गयी।

सुबह को जब मैं नीचे आया तो इस बात का डर था कि कहीं उषा का पति न डांटे-फटकारे, सभी के सामने बेइज्ज़ती करे ! इस बात का भी कुछ कम डर न था कि वह उषा को मार-मारकर खाल उतारेगा। मैं सीधा उस कमरे में चला आया, जहां छकरी-संगीत का गायन हो रहा था। वहां महिलाओं में बैठी उषा भी 'तुबकनारी' पर ज़ोर-ज़ोर से थपकियां मार रही थी। दूसरी ओर मर्दों की टोली में उषा का पति इस संगीत का रस लूट रहा था। कमरे में प्रवेश करते किसी ने भी मेरी ओर ध्यान नहीं दिया। न उषा ने, न ही उसके पति ने। जैसे कुछ हुआ ही न था।

तभी मैं समझ गया कि उषा के पति ने इस बात को कोई महत्त्व नहीं दिया है।

इस घटना को हुए आज पूरे सात वर्ष हो गये। अब मैं सब कुछ भूल गया था, किन्तु उसका इस प्रकार भाग जाना और मेरा उसको किसी

पराये मर्द के साथ हाथ में हाथ मिलाकर देखना—इससे मेरे दिल में पुरानी यादों का तुफान-सा उमड़ आया। इससे मानो मेरे जीवन-इतिहास के पन्ने पलटने लगे। मन में संदेह का एक काला नाग रेंगने लगा। बहुत शरारत आयी उस पर। जी में आया, यहीं उसके बाल नोच लूँ, मार-मारकर खाल उतार लूँ। दोनों को पुलिस के हवाले कर दूँ। सभी को कह दूं कि किस प्रकार यह वहाना बनाकर सात-सात, आठ-आठ दिन घर से गायब रहती है, किन्तु आज मैं जान गया कि पति की उपेक्षा भी पत्नी के लिए धीरे-धीरे प्रभाव करने वाला ज़हर होता है और बाद में ढलती उम्र वह चरित्रहीन हो जाती है; इसलिए मैंने उस समय कोई जिरह न की। मेरे सामने उषा के पति की तस्वीर सामने आयी, जिसने उस दिन उषा को माफी दी और कोई जिरह न की, जब वह मेरे साथ अन्धेरी कोठरी में थी।

सच्चा-झूठा

□

उसने एक लम्बी आह भरकर कहा—'जाने कहाँ गयी है आज भी!'

अस्पताल में आज उसकी 'नाइट ड्यूटी' लगी थी, इसलिए वह दिन को 'फ्री' था। विचार था कि आज सपत्नीक मुगल बाग़ात को सैर करें। एक तो दिल बहल जाएगा इसका दूसरा समय भी आसानी से कटेगा। जाते भी कहाँ है हम कश्मीरी! बाहर से लोग हजारों रुपया खर्च करके यहां के सुरम्य स्थानों को देखने के लिए आते हैं और हम हैं कि इनका नाम भी पता नहीं, जैसे हम कश्मीर में नहीं रहते उसने यह सब अपने-आपमें सोचा। अचानक उसकी नज़र कमरे के सामने वाली दीवार पर पड़ी। वहां खूंटी पर मैली साड़ी को देखकर वह बेचैन-सा हो गया। याद आया आज भी वह शलवार-फ्रॉक में यहां से चली गयी है। कितनी बार कहा था कि अब उसका शरीर ऐसे कपड़े पहने के लायक नहीं रह गया है। पहले वह इनमें खूब स्मार्ट लगती थी। किन्तु जाने वह ऐसे कपड़े पहनने के लिए ज़िद क्यों पकड़ती है। शायद इसलिए कि 'रिहर्सल' करते समय इनमें आसानी होती, हाथ-पांव सुविधा से पटके जाते तथा नाटक का रोल करने में ज़रा भी मुश्किल नहीं होती। किन्तु यह भी क्या पता है उसको कि ज्योंहि वह इन कपड़ों में चलती-फिरती है, तो कमर से नीचे के भाग में कैसी हरकत होती है उसकी! यह देख सब हंसते हैं, कई आंखें फैलाकर मुंह बनाते हैं।

वह कुर्सी पर बैठ गया—समय को काटने के लिए। फिर पास वाले मेज़ पर पड़ी एक कश्मीरी पत्रिका के पन्ने पलटने लगा। सोचा कि आज क्यों उसको इतनी दे हो गई ! सूर्यास्त कब का हो गया। अबसे कुछ देर बाद सब दुकानें बन्द ोंगी। लोग घरों में आकर सोयेंगे और वह···वह कहां है ? जाने रास्ते में उसको किसी ने तंग न किया हो, या ड्रामा क्लब के मैनेजर ने अपने ही घर पर रिहर्सल करने के लिए कहा हो। यह भी हो सकता है कि रास्ते में किसी दुर्घटनावश मर गयी हो !

दरवाज़ा खड़कने पर उसको लगा कि कोई आया है—

हां, यह वही थी। वही ! थकी हुई। पसीनों से तरबतर ! दमे के रोगी की तरह सांस फूल रही थी उसकी !

वह कमरे के अन्दर आयी। सामने 'बेड' पर कुछ क्षण के लिए निढ़ाल लेट गयी।

कमरे में दोनों चुप।

उसने उसे कुछ नहीं कहा। केवल सिर से पांव तक एक नज़र फेर ली। इस एक नजर में नाराज़गी, अधिकार तथा अपनेपन का सा तसव्वुर झलकता था।

उसने जाना, आज वे नाराज़ हैं। किसलिए ? वह यह समझी नहीं। कुछ क्षण बाद वह उठी। कहा—'क्या कर रहे हो ?

'कुछ नहीं, अपने भाग्य पर रोता हूँ।'—उसने जल-भुनकर कहा।

'इतनी नाराज़गी ! किसलिए ?—उसका प्रश्न।

'अब तो हद हो गयी ! इस समय रात्रि के साढ़े नौ बज गये हैं।'—उसने घड़ी की ओर देखकर कहा।

'देर हो गयी तो इसमें मेरा क्या दोष ! घर से निकलना बस की बात होती है, किन्तु घर वापस आना किसी के बस में नहीं। पांच बजे तक दूर-दर्शन केन्द्र में थी। वहां एक कश्मीरी नाटक की 'शुटिंग' हो रही है, जिसमें मैं एक नौकरानी की भूमिका निभा रही हूँ। वहाँ से मैं ड्रामा-क्लब गयी, किन्तु वहां निर्देशक नहीं था। मैं वहां से चली आयी लेकिन रास्ते में निर्देशक साहब मिले, उन्होंने मुझे फिर 'ड्रामा क्लब' आने की कहा। आज वहां हमारे नाटक का आखिरी रिहर्सल था और कल 'टैगोर-हाल' में

पहला शो देना है न ! मैं मजबूर हो गयी। उसके साथ वहां जाने के लिए। इसलिए इतनी देर हो गयी। तिस पर भी इस अन्धेरे में वहां से हब्बाकदल तक कोई सवारी नहीं मिली ! पैदल चलते-चलते टांगें टूट गयीं। ओफ !'

उसने यह सब इस तरह कहा, मानो दिन का हाज़िरी-रिपोर्ट उसके सामने रखा। उसने भी यह सब बड़े ध्यान से सुना। फिर पूछा—'क्या अकेली आयी या किसी अन्य के साथ···।

'हां, क्लब का एक आदमी यहां तक मेरे साथ आया। मैं डरती हूँ इन चोर गलियों में चलते-चलते···।'—वह दरजवाब बोली।

उसने कपड़े बदले। फिर रसोई-कमरे में आ गयी। यहां वह फिर अकेला रह गया। जाने उसको क्या हो गया। एकदम भूली हुई बातें याद आयीं तथा अतीत के बियाबानों में भटक गयीं। उसके सामने वह क्षण फिर आया—

तब वह अविवाहित था, किन्तु शादी की बातें उसके साथ चल रही थीं।

शादी के पहले वह रोज उससे मिलता, बातें करता तथा हाथ में हाथ मिलाकर बेकार-सा शहर के गली-कूचों को नापता। इस तरह वह उसके साथ प्रेम-प्रदर्शन करता। उस दिन जब वह उसको 'गांधी-पार्क' के सामने मिला तो वह उससे घबरायी-सी बोली—'बस छोड़िए अब, आज इतना ही। घर पर पापा मेरी राह देख रहे होंगे।'

'इतनी जल्दी ! बात क्या है ?'—उसने आश्चर्य से पूछा।

'कुछ नहीं। कल जब मैं देर से घर पहुँची तो पापा मम्मी पर बिगड़ रहे थे। मार-मार कर बेचारी की बुरी हालत कर दी थी। मम्मी को देखकर लगा कि आज खैर नहीं। मैं डर गयी। कुछ नहीं सूझा, क्या करूं !' सारा बदन थर-थर कांपने लगा। किन्तु बाद में, मैंने एक चाल चली कि वे एकदम मोम हो गये। उस समय यदि मेरे स्थान पर कोई दूसरी होती, तो वह उसी दम बेहोश होकर गिर गयी होती। किन्तु झूठ बोलने में जो चाल मैंने चली, वह लाजवाब थी।'—उसने

कहा ।

'चाल ! कौन-सी ?' जरा मैं भी तो सुनुं ।—उसने पूछा ।

'तुमसे सब कुछ खुलकर कहना पड़ेगा । राज को राज में ही रहने दो ।'—उसने गर्व से कहा ।

'प्लीज़, मेरे लिए, मैं भी तो जानूं, तुम कितनी होशियार हो ?'—उसने कहा ।

उसने पहले कहकहा मारा । फिर गर्व से कहा—'मेरे पापा हैं न, एकदम अजीब आदमी हैं । किसी के मरने या चोट लगने की खबर को सुनकर वे एकदम द्रवित हो उठते हैं । उस समय मेरे दिमाग में एक चाल सूझी, पापा से झूठ कहने की । वैसे उपयुक्त अवसर तो यही था, वरना उस समय उन्होंने मेरी खाल उतार दी होती । कहा, 'मेरे साथ एक सहेली थी जिसको रास्ते में चलते-चलते अचानक फिसलन हो गयी । वह नीचे तड़ाख से गिर गयी और पांव को चोट लगी । फिर मत पूछिए, मैं कितनी परेशान हो गयी । मैं उसको टैक्सी में अस्पताल ले गयी । वहां उसको पट्टी बांधवाकर घर तक साथ गयी । इतने में शाम के आठ बज गये । आजकल दिन तो छः बजे ढ़ल जाता है । जाड़े के दिन हैं न !'

अब तक पापा बर्फ की तरह जम गये थे, किन्तु यह सुनते ही पानी हो गये ।

'अच्छा तो यह बात है ?'—पापा ने कहा ।

'तो क्या झूठ बोलूँगी । झूठ बोलना गाय खाना हैं ।'—मेरा उत्तर ।

'मेरी बेटी झूठ क्यों बोलेगी । तुम ही इस पर नाहक शक लाते हो । अबकी बार मुझे मारा तो देखना, इसका मज़ा चखाऊँगी ।' मम्मी बीच में बोली ।

मम्मी की बात को बीच में ही काटकर पापा ने कहा—'अच्छा तो यह बताओ, वहां से क्या अकेली आयी ?'

'अकेली क्यों आती ! सहेली का छोटा भाई मेरे साथ न था !'—मैंने बोला ।

'यह सुनकर पापा बहुत खुश हुए । उसके दिल में मेरे प्रति जो विश्वास था, उसकी नींव और सुदृढ़ हो गयी । दरअसल जो कुछ मैंने

कहा, वह सब झुठ था । वास्तविकता क्या है, वह तो तुम जानते ही होगे । वास्तविकता यहीं है कि कल शाम मैं तुम्हारे साथ घर तक आयी थी ।'—उसने कहा ।

इसके बाद दोनों ने कहकहा लगाया ।

वह परेशान-सा हो गया । जो क्षण उसके सामने अभी-अभी घिरा, उसको लगा कि वह इसी में खो न जाये । वह पसीनों से तरबतर हो गया । अचानक उसने घड़ी की तरफ देखा । शाम के साढ़े आठ बजे थे ! वह उठा और रसोई-कमरे में आया ।

'खाना तैयार है, देर हो गयी है ।'—उसने पूछा ।

'कहीं जाना है ?'—उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा ।

'आज से मेरी अस्पलाल में 'नाईट ड्यूटी' लगी है ।'—उसका उत्तर ।

'सच ! अब तक क्यों नहीं कहा ?'—उसने पूछा ।

'यह भी कोई बात थी कहने की ?'—उसने उत्तर दिया ।

उसने उसकी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया । विश्वास ही नहीं आ रहा था कि यह सच है । मगर झूठ भी वह क्यों बोलता ! उसने अपने आपसे सोचा । फिर भी यह सोचने की बात है कि उसने मुझे यह बात अब तक क्यों नहीं कही ! कुछ नहीं सूझा उसे ! केवल एक क्षण ने उसको तत्क्षण घेर लिया—

आज लगभग सात वर्ष हो गये—

उस दिन उसकी सहेली की शादी थी । वह उसको मिलने गयी, यह कहने के लिए कि कल वह 'पिक्चर' नहीं जा सकती क्योंकि बरात कल जाने वाली थी । इसलिए 'पिक्चर' देखने का समय नहीं मिल सकता था ।

'तो मैं क्या अकेले 'पिक्चर' देखूंगा ?'—उसने कहा ।

'प्रोग्राम कैंसिल करो । फिर कभी···।'—वह बोली ।

'तो फिर मैं भी तुम्हारी सहेली की शादी में भाग ले लूँगा ।'—उसने कहा ।

यह सुनकर उसका चेहरा लाल-लाल हो गया । साथ ही मुँह से हंसी का फव्वारा-सा छूट गया । बोली—'कैसे आ सकते हो तुम वहां, क्या कोई रिश्ता है तुम्हारा ?'

'नाम का रिश्ता भी नहीं । केवल तुम्हारे लिए···।' उसनें कहा ।

'वे कान पकड़कर वहां से निकालेंगे । एक तो पराया लड़का और वह भी मेरें साथ—यह तो अच्छा नहीं रहेगा ।'—उसने कहा ।

'तुम कहोगी न उनसे, यह मेरा भाई है ।'—उसका उत्तर ।

'यदि किसी को राज़ मालूम हो जाए तो ?'—उसने सफायी पेश करते हुए कहा ।

'जब मैं जानूं, गडबड़ होने वाली है तो मैं भाग जाऊँगा'—उसका उत्तर ।

'कैसी बचपने की बातें करते हो । यही बचपना तो घर में भी···' उसने व्यंग-सा कसा ।

'बचपने की बातें नहीं करता हूं । अलबत्ता मैं बात-बात में एक हथियार को ज़रूर काम में लाता हूँ ।'—उसने गर्व से कहा ।

'कौन-सा हथियार ? मैं भी तो सुनूं ।'—उसने पूछा ।

'झूठ बोलना । यही मेरा सबसे बड़ा हथियार है । सच्च को झूठ की तराज़ू में तोलना—इसको मैं अच्छी तरह जानता हूं । यदि मैं ऐसा न करता तो तुम्हारे साथ देर रात तक बातें करने का मौका कहां मिलता !'—उसने कहा ।

'यदि आज तुम मेरी सहेली के घर आओगे तो बताइये भला, पिताजी से क्या झूठ बोलोगे'—उसने कहा ।

'मैं उनसे कहूँगा, आज मुझे 'नाइट ड्यूटी' लगी है ।—उसका उत्तर ।

'नाइट ड्यूटी ! कहां ? तुम तो अभी डॉक्टर नहीं बन गये हो । अभी तो 'स्टुडेण्ट' ही हो । नाइट ड्यूटी डॉक्टरों की अस्पताल में होती है ।'—उसने कहा ।

'यही तो बात है । दरअसल, मेरे पिताजी अजब आदमी हैं । वह

चाहते हैं, 'जितना जल्द हो सके, मैं अच्छे से अच्छा डॉक्टर बन जाऊँ । इसको कितना समय लगेगा, इससे उनको कोई सरोकार नहीं । अलबत्ता वह मुझे अभी से डॉक्टर साहब' कहकर पुकारते हैं और यदि मैं उनसे कहूँ कि आज मुझे डॉक्टरों की तरह अस्पताल में 'नाइट ड्यूटी' लग गयी है, तो कितना खुश हो जाएगा वे'—उसने सविस्तार कहा ।

'यदि उनको सच्ची बात का पता चले तो ?'—उसने पूछा ।

'मैं कहूँगा, ज़रूरी नहीं कि नाइट ड्यूटी अस्पताल में ही होती है । अस्पताल के बाहर भी नाइट ड्यूटी लग सकती है । घर में कोई बीमार हो तो डॉक्टर की वहीं नाइट ड्यूटी पर लग सकता है ।'—उसने कहा ।

'तो फिर झूठ बोलने की कला आपसे ही सीखनी चाहिए'—उसने हँसी में कहा ।

'क्या समझी फिर ! पानी को दूध और दूध को पानी बनाना मुझे आता है ।'—उसने कहा ।

उसने उसकी तरफ बार-बार देखा । इस बात पर गर्व हुआ कि उसके लिए वह कुछ भी कर सकने को तैयार है, किन्तु उस दिन उसने उसको सहेली के घर आने से रोक दिया ।

सुबह के नौ बजे ! उसने कोट-पतलून पहनकर अस्पताल जाने की तैयारी की । दीवार के साथ लगे आदमकद आईने के सामने टाई की 'नॉट' ठीक करते हुई उसने कहा—'आज क्या प्रोग्राम है तुम्हारा ?'

वह कुर्सी में बैठी हुई, हाथ में कागज़ के दो-तीन पत्रों को लेकर कुछ पढ़ने में विलीन थी । उसकी बात सुनकर वह मानो गहरी नींद से बेदार हो गयी । सिर ऊपर उठाकर वह उसकी ओर ध्यान से देखने लगी । कहा —'बारह बजे तक नाटक के संवाद याद करूँगी । उसके बाद चार तक ड्रामा-क्लब ! वहां बशीर नाटक का निर्देशन करेगा । रिहर्सल पूरे तीन घंटे तक चलेगा । उसके बाद···।'

'कौन बशीर ?'—उसने बात को बीच में काटकर पूछा !

'ये नवाकदल में रहते हैं । नौकरी ड्रामा डिवीज़न में काम करते हैं ।

यह उन्ही का प्ले है न । इसी का वह मंचन करना चाहते हैं ।'—उसका उत्तर ।

यह सुनकर उसने दम घुटता-सा महसूस किया । किन्तु उससे कुछ नहीं कहा । फिर आंखों के सामने वशीर की तस्वीर आयी । लाल-लाल आँखें गर्दन से नीचे तक गिरे हुए बाल ! तीर-कमान मूँछें ! अक्सर सिगरेट पीने और पान चबाते हैं ! दूर से देखो तो कोई अमरीकन हिप्पी लगते हैं और पास से बिल्कुल यमदूत ! वह भी समय था, जब वह उसका सहपाठी था । वहां सब उसको 'बशीर-दादा' कहकर पुकारते थे । रास्ते में चलती नौजवान लड़कियों को तंग करने में वे नामी थे । इसीलिए तो कई बार जेल की हवा भी खायी थी । वशीर दादा—वह एक बार फिर इसकी तस्वीर को आंखों के सामने आया । फिर उसकी ओर देखा । वह पहले की तरह नाटक के संवाद कण्ठस्थ करने में विलीन थी ।

वह कमरे के बाहर आया । जाते समय उसको कहा—'अच्छा, चार बजे प्रताप-पार्क के सामने मेरा इंतिज़ार करना ।'

'उस समय मुझे ज़रूरी काम है'—वह दौड़ती हुई दरवाज़े के पास आयी । कहा—'आज मुझे वहां भी जाना है न !'

'कहां ?'—उसने उत्सुकता से पूछा ।

'रिजीना होटल ! आज वहां पार्टी है । गत सप्ताह जो प्ले हमने टैगोर हॉल में दिया था, उसमें मैं 'बेस्ट एक्ट्रेस' चुनी गयी हूँ । उस सिलसिले में क्लब की तरफ से वहां पार्टी है ।'

'बेस्ट एक्ट्रेस'—यह सुनकर कुछ क्षणों के लिए वह वहां बुत-सा बनकर रह गया । अपने-आपसे पूछने लगा कि अब से मैं इसको क्या कहकर पुकारूँगा बेस्ट एक्ट्रेस या बेस्ट पत्नी ! आज उसके मुंह से पहली बार ये दो शब्द निकले । अब तक वह खुशी-खुशी सब कुछ सह लेता था । उसका देर से घर वापस आना या सुबह सात बजे घर से निकालना ! मगर आज उसके मुंह से ये दो शब्द सुनकर वह पागल-सा हो गया । चलते-चलते उसने महसूस किया कि ज़मीन नीचे खिसक जाती है और वह तल प्रदेश के किसी कोने में विचरण कर रहा है । सड़क पर वह बद-

हवासी की सी हालत में चल रहा था । कितने ही क्षणों ने उसे आ घेरा समझ में कुछ नहीं आ रहा था ।

इन्सान को कभी-कभी भूली हुई बातें याद आतीं और फिर वह उनको अपने-आप भूल जाता है । यूं समझिए कि मक्खी कुछ क्षणों के लिए उसको कान के ऊपर रेंगकर 'गीं-गीं' करती है । बाद में फिर अपने पंखों की आवाज़ लगाती है । मन में भूली हुई बातों को स्थायी रूप से स्थान देना उतना ही असंभव है जितना कि मुर्दे को फिर से जीवन प्रदान करना । किन्तु इनका उपयोग करना उस समय उपयुक्त रहता, जब किसी की धज्जियां उडानी हों । उस समय ऐसी बातें मानो आग पर घी डालने का काम करती हैं ।

कितनी बार उसने चाहा कि मैं उसके साथ सैर करने जाऊँ ! किन्तु जब कभी ऐसा प्रोग्राम बना, तो उसने यह कहकर टाल दिया कि मुझे फुर्सत नहीं, प्ले का रिहर्सल चल रहा है आदि । मगर आज उसने दृढ़ निश्चय किया था कि उसके साथ कहीं सैर को ज़रूर जाऊँगा । आखिर कब तक चलेगा यह रिहर्सल । आज मैं उसकी कुछ नहीं सुनूंगा !

'अरी ओ, कल छुट्टी है । पहलगांव जायेंगे । क्या सुना !'—उसने कहा ।

इसके बजाय कि वह उसकी इस बात का उत्तर दे, वह बालों को कंघी करने में व्यस्त हो गयी । यह पहली बार था, जब उसने उसको इस तरह बाल संवारते तथा जूड़ा बनाते देखा । तिसपर भी गालों पर इस तरह पाऊडर के पफ लगाना । यह सब उसको नहीं सुहाया । अपने सौंदर्य के प्रति इस प्रकार की सतर्कता । आज क्या बात है ? यह देख उसका शरीर थर-थर कांपने लगा । अपने कहे का उत्तर न मिलने पर उसने एक बार फिर कहा—'अरी, मैं क्या कह रहा था । बकता तो नहीं था ।'

वह उठी फिर श्रृंगारदान को अलमारी में रखा । बोली—'क्या कह रहे थे आप ?'

'कल पहलगांव जायेंगे'—उसने प्यार से कहा ।

'मगर मेरे प्ले का क्या होगा ! कल तो उसका आखिरी रिहर्सल है। यदि मैं कल थियेटर न जाऊँ, बशीर नाराज़ हो जायेगा । अब तक की सारी मेहनत बेकार होगी ।'

'मुझसे ज़्यादा महत्व बशीर को देती हो !'—उसने अपने-आपसे सोचा । उसका चेहरा तमतमाया । बोला—'क्या पता, यह सब तुम सच कह रही हो ! यह सब झूठ है । बहाना है । झूठ बोलने में तुम शादी से पहले ही अपने-आपको उस्ताद मानती थीं और आजकल···।'

उसने उसकी ओर ध्यान से देखा । फिर भौंहें चढ़ाकर बोली—'यह सब तुम झूठ मानो या सच्ची । मुझे उससे कोई सरोकार नहीं । अलबत्ता यह बात तो तुम्हें ज़रूर माननी पड़ेगी कि हर पेशे की अपनी नज़ाकत होती है । कोई भी पेशा अपनाना बस दस से चार बजे तक ही काम करना नहीं । खासकर कोई भी कला समय की बंदिश में पनपती नहीं । इसको पनपाने के लिए महीने क्या, कई सालों की अनवरत परिश्रम की आवश्यकता होती है और जिस कला को पेशे के रूप में अपना लिया जाये, उसके लिए श्रम की ही नहीं बल्कि, एक-दूसरे पर विश्वास करने की भी ज़रूरत है । आपको मुझ पर विश्वास नहीं, मैं झूठ बोल रही हूँ । मगर तुम भी इसमें किसी समय दक्ष थे । दूध को पानी और पानी को दूध बनाना मुझे आता था या तुम्हें···।'—उसने कहा ।

उसने बात सुनी और ज़ोरदार कहकहा मारा । फिर उसके सामने जाकर ज़ोर से गले लगाया । वह उसकी इन बातों से बिलकुल मोम हो गया । बर्फ का जमा हुआ पत्थर एकदम पिघल गया । यह बात उसकी समझ में भी नहीं आयी । न जाने क्यों ?

●

दल बदल

□

उसको देखकर ही उसने एक लम्बी आह भरी । फिर अपने-आपसे कहा —'यह मेरा पीछा नहीं छोड़ेंगी क्या ?'

सड़क के चौराहे पर वह बिजली के खंभे के सहारे दत्चित खड़ा था। वैसे तो, वहां वह किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था । बस यों ही खड़ा था वहां । उसकी नज़रें जन-समूह की ओर लगी थीं, जो इसी चौराहे से गुज़रकर न जाने कहां जा रहा था । चारों ओर शोर था । उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि आज यहां ऐसा क्यों है ! वह यही सोच रहा था कि इतने में किसी की परवाह किये बिना वह उसके सामने खड़ी हो गयी ।

उसको सामने देखकर वह पसीने से तरबतर हो गया । क्यों यह उसकी समझ में भी नहीं आया ।

उसने पहले उसके साथ हाथ में हाथ मिलाया । फिर दोनों एक साथ चलने लगे । कहां ? यह तो उसकी समझ में भी नहीं आ रहा था । उसने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया । ऐसा करना तो उसने इसलिए ज़रूरी समझा क्योंकि·····यदि ऐसा न करता तो लोग क्या कहते ।

कुछ क्षण बाद दोनों के बीच खुलकर बातें हुई । उसके साथ शादी का वायदा करने के बाद वह एकदम निडर एवं निर्लज्ज सा बन गया था । उसने हया का पर्दा उठाने की रस्म को उसने ही यह कहकर पूरा किया

था—'एक मर्द होकर भी तू डरता है ! ताज्जुब है !'—इस छोटे से वाक्य ने उसके भीतर के भय पर मानो एकदम हमला-सा बोल दिया। तब से उसको इस बात का ध्यान ही न रहा था कि मैं किस से प्रेम करता, किसकी पूजा करता था। इस प्रकार दस वर्ष की तपस्या को उसने अपने-आप विफलकर दिया।

लोग आ-जा रहे थे। वह भी उनके साथ कदम से कदम मिलाकर जा रहा था। चलते-चलते उसने अपनी इस साथिन से पूछा।

'इतना बड़ा जन-समूह ! यह कहां जा रहा है ?'

'आज जलसा है न।'

'जलसा ? कहां ? क्यों ?'

'वह तो मुझे भी पता नहीं। अलबत्ता सुना है कि आज कोई नेता भाषण देंगे, जिसमें वे उनके हित की कोई महत्त्वपूर्ण बात कहेंगे। एक अहम फैसला !

'फैसला ! कौन सा फैसला ?'

'मुझे क्या पता ! यह तो उसका भाषण सुनने के बाद ही पता चलेगा।'

'यह वही फैसला तो नहीं जो मैंने परसों अपने सगे-संबंधियों और यार-दोस्तों को सुनाया ?'

'कौन-सा फैसला सुनाया ?'

'तुम्हारे साथ शादी करने का फैसला।'

इसके बाद दोनों ने एक-साथ ज़ोरदार कहकहा मारा। उसके मुंह से 'शादी' शब्द सुनकर वह मन-ही-मन खिल उठी। इस बात का गर्व हुआ कि शादी करने के लिए उसने जो चाल चली है, वह सार्थक रही है। नहीं तो, कहां वह सुन्दरी ! रूपसी ! जिसकी पूजा में वह छुटपन से ही विलीन था। दरअसल उस प्रेम के पूजने से क्या लाभ जिसका सिंचन पैसा व माल-जायदाद से न किया जाये। उसके पास तो हुस्न था, मगर थी वह बेचारी एक गरीब लड़की ! इसलिए तो इसने उसको छोड़ा।

वह तो उसके साथ चलता रहा। मगर वह जगह है कहां, जहां इस जलसे का आयोजन हुआ है। जहां कोई नेता राष्ट्रहित में लोगों को अपना

फैसला सुनायेंगे। आखिर यह फैसला है क्या, जिसको इतना महत्व दिया गया है—उसने अपने-आपसे सोचा।

आखिर वे जलसागाह के निकट पहुंच गये। एक बड़ा मैदान, जिसमें एक विशाल जन-समूह ! स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े,—सभी इसी प्रतीक्षा में थे कि कब उनका नेता आये और वे सुनें कि उन्होंने उनके हित में क्या फैसला किया है।

जलसागाह का सुन्दर श्रृंगार रंगारंग झंडियों से किया गया है। यहां दूर से लकड़ी का बना एक मंच भी दिख रहा था, जिस पर कुर्सियां पूर्व-पश्चिम की ओर मुंह किये खड़ी थीं। सामने था लाऊडस्पीकर !

यहां पहुंचकर वह उसके साथ इस तरह चिपकी-सी रही मानो कोई उसको यहाँ से भगाकर ले जाता है। वह उंगलियों के संकेत करती हुई बोली—

इस मंदिर की तरफ देखो न। इसके कलश पर भी यह तिरंगा फहरा रहा है और यहां इस मंच पर भी।

'क्यों न फहराता'—उसका उत्तर

'हां, क्यों नहीं। मैं भी तो यही कह रही हूँ। वह तो भगवान का घर है और यह नेता का दौलतखाना ! दोनों स्थानों पर लोग झुकने आते हैं।'—उसके कहने में व्यंग्य था।

जलसागाह के चारों ओर झंडियां फहरा रही थीं। सब खुश थे। अपने प्रिय नेता की प्रतीक्षा में यहां सुबह से ही खड़े थे। उनके भाषण को सुनने के लिए उत्सुक। उनके फैसले को सुनने के उत्सुक ! सबों की नज़र में इस फैसले का बड़ा महत्व था। सब यही सुनना चाहते थे कि आखिर यह फैसला है क्या ! बाद में वे उस पर टीका-टिप्पणी करना चाहते थे। उनके हित में है या नहीं ! उनका भाग्य संवार सकेगा या नहीं।

वह भी इस विशाल जन-समूह में खो गया। इसलिए खुश था कि आज यहां कोई नेता आयेगा और हमारे हित में फैसला सुनायेगा। बाद में वह लोगों से इसके संबंध में उनकी राय पूछेगा ! उनके हित में है या नहीं। वह यही सोच रहा था कि उसकी नज़र अपनी साथिन पर पड़ी। वह उदास-उदास-सी दिख रही थी। क्यों ? यह उसकी समझ में भी नहीं आया। आखिर वह उससे कहने लगा—

'इस आज़ाद माहौल में तुम उदास-सी क्यों दिख रही हो ?'

'मुझे यहां घुटन-सी महसूस हो रही है। यहां आज़ादी कहां।'

'क्यों ? क्या कह रही हो ? हम सब अब आज़ाद हो गये हैं।'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'हम जहां थे, आज भी वही हैं। आज़ादी उनको मिली, जिन्होंने गरीबों के साथ अन्याय किया, अपने सगे-संबंधियों को तरह-तरह का लाभ पहुंचाया। अपनी कुर्सी को बहाल रखने के लिए गरीबों से वोट मांगा। मैं सोचती हूं कि ऐसे लोग हमें कब छोड़ेंगे ?'

'जब तुम मुझे छोड़ दोगी न। तभी।'

'ऐसा कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं।'—यह कहते हुए उसने एक हलकी सी चीख मारी। वह सहम गया। उसने उसको दोनों हाथों से थाम लिया। कुछ क्षण पश्चात जब वह संभल गयी, वह उसके साथ कदम से कदम मिलाकर मंच के बहुत करीब आ गयी।

मंच ! इसके सामने विशाल जन-समूह ! सब नेता की प्रतीक्षा में खड़े ! नेता लोगों का हितचिंतक ! उसने कई बार निःस्वार्थ भावना से लोगों के हित में कार्य किया है।

इतने में जलसागाह में खलबली-सी मच गई। लोगों ने खड़े होकर नारे लगाने शुरू किये। फिर हाथ में ली हुई झंड़ियों को फहराने लगे। बीच में हमारे सामने कोई खड़ा हो गया और उसने हम दोनों को एक-एक झंड़ी फहराने के लिए दे दी। इसके बाद एक बार फिर 'ज़िन्दाबाद' का नारा गूंजने लगा और वह मुझसे कहने लगी—

मेरा दिल धड़क रहा है।'

'क्यों ? शायद इस विशाल जन-समूह को देखकर घबरा रही हो ?'

'नहीं।'

'तो फिर ?'

'उस फोटो को देखकर न जाने मुझे क्या हो रहा है।'

'क्यों ? यह तो राष्ट्रपिता का फोटो है।'

'नहीं। उसकी रूह यहां तड़प रही है।'

'क्या कह रही हो इस महान नेता के नक्शे-कदम पर चलकर ही हमारे वर्तमान नेताओं ने जनहित कार्य का करने की प्रेरणा ली है। मंच की शोभा तो इसी फोटो से है।

'यदि ऐसा होता तो मैं उन नेताओं को भगवान से कुछ कम नहीं मानती।'

'तो फिर क्या होता है ?'

'ज़ुल्म-सितम, लूट खसूट और अपना उल्लू सीधा करने के लिए इस महान नेता का नाम हर जगह बदनाम किया जा रहा है।'

'वह कैसे ?'

'लोगों से जिसकी दिखाई राह से चलने का वायदा किया जाए और बाद में उसी राह पर चलकर राह भटके, उससे पथ-प्रदर्शक का नाम बदनाम नहीं होता ?'

'जिस तरह तूने मुझे असली राह पर भटका दिया है।'

'नही, नहीं ऐसा मत कहा। अब तुम मेरे देवता हो।'—इसके साथ ही उसने एक बार फिर हलकी सी चीख मारी। मैंने उसको दोनों हाथों से थाम लिया। कुछ क्षण बादव ह संभल गई।

इतने में दूर से शोर सुनाई दिया। मंच के सामने जो आदमी बैठे थे, उन्होंने झंड़िया फहराकर 'ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने शुरू किये। बाद में सभी ने तालियां बजाकर 'आ गया, आ गया' कहा। जिन्दाबाद करने वालों ने ज़ोर-ज़ोर से नारे लगाये। देखते ही देखते मंच पर एक आदमी खड़ा हो गया। वह कौन था—यह उनकी समझ में नहीं आया। उसने लाऊडस्पीकर के सामने खड़े होकर अपनी बुलंद आवाज़ में कहा—

'खामोश ! खामोश !!'

यह सुनकर सब चौंक गये। सबों ने आंखें मसल-मसलकर उस आदमी को ध्यानपूर्वक देखा। हर किसी को विश्वास ही नहीं आ रहा था कि यह वही है। आज तो इनको बिल्कुल पहचाना नहीं जाता। अरे यह क्या वही है या अन्य कोई ! ये तो आज अपने वस्त्रों में नहीं है। सब यही सोच रहे थे। फिर एक-दूसरे से खुसर-फुसर होने लगी। इतने में लाउड़स्पीकर से किसी ने एक बार फिर अपनी बुलंद आवाज़ में कहा—

'खामोश !खामोश !!'

'क्या आप इनको पहचानते हो ?'—उसने लोगों से पूछा।

'नहीं, नहीं।'—सभी ने हाथ हिला-हिलाकर कहा।

'यहीं तो हमारे नेता हैं न! हमारे हित चिंतक हमारे पालनहार ! ये तो सारे देश में मशहूर हैं। सब इनको अच्छी तरह जानते हैं। किन्तु आश्चर्य यह है कि आप इनको पहचानते नहीं। अरे, आपकी आँखों से दिखाई देता है या नहीं। हां, अब समझ में आ गया। इन्होंने आज नये वस्त्र पहने हैं न। इनके बदन पर आज वे पुराने वस्त्र नहीं जिनमें आप इनको हमेशा देखते आये हैं। किन्तु यह मत समझिये, यह सब इन्होंने अपने लिए किया है। यह सब इन्होंने आपके लिए किया है, आपके कल्याण के लिए। आपकी सुख-शान्ति के लिए। इस खुशी में सब तालियां बजाओ।'

सबों की समझ में कुछ नहीं आया। इन्होंने पहले यों ही तालियाँ बजायीं। फिर झंडिया फहराकर 'ज़िन्दाबाद' के जोरदार नारे बुलंद किये। पीछे से अब इतना शोर हो गया कि कानों के पर्दे फटने लगे। इतने में लाउडस्पीकर से उसी आदमी ने जोरदार आवाज़ में कहा—

'खामोश ! खामोश !!'

'अब मैं आपके प्रिय नेता को फूलों का हार पहनऊंगा। फिर देखूं अपने इन नये वस्त्रों में ये कैसे जंचेंगे !'

इसके साथ ही ज़िन्दाबाद के ज़ोरदार नारे एक बार फिर गूंजने लगे। सभी ने झण्डियां फहरा दीं। इसके साथ ही सब की नज़रें मंच की ओर लगी हुई थीं। अंत में लोगों के नेता को फूलों का हार पहनाया गया। इसके बाद पटाखे और आतिश्बाज़ी ! चारों ओर लोगों की चहल, पहल बढ़ गयीं फिर नेता महोदय लाउडस्पीकर के सामने खड़े होकर लोगों से सम्बोधित होकर बोले—

भाईयो और बहनों !

मैंने आज नये वस्त्र पहने, पुरने छोड़े। यों समझो कि मैंने दल-बदल किया है। आपको मैं इन वस्त्रों में अच्छा लगता हूं न ! मुझे पूरी आशा है कि इन वस्त्रों में, मैं आपको अच्छा ज़रूर लगूंगा। मैंने दल बदल

किया, केवल कल्याण के लिए। देश के नव-निर्माण के लिए। राष्ट्रपिता के स्वप्नों को साकार करने के लिए। इसके लिए यदि मैंने 'फिरन' पहनना छोड़ दिया और कोट-पतलून पर उतर आया तो इसमें कौन-सी आपत्ति ! इसका उद्देश्य केवल एक है—देश की तथा देशवासियों की सेवा करना। अब सच कहना, ये नये वस्त्र मुझ पर कैसे जंचते हैं ! मेरी कसम।'

लोगों को विश्वास ही नहीं आ रहा था कि उनका प्रिय नेता ऐसे वस्त्र धारण करेगा। क्या पड़ी थी उसको ऐसे वस्त्र धारण करने को। ये तो अपने ही वस्त्रों में अच्छा लगता था। उसने ये वस्त्र क्यों पहन लिए ! शायद इसलिए कि वह इस बुढ़ापे में साहब बनना चाहता है। जवान बनना चाहता है। इसी को कहते हैं न, साठ वर्ष पार करने के बाद कोई बुद्धिमान बनता है तो कोई मूर्ख।

ऐसा देखकर वह भी असमंजस में पड़ गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। हां, इस बात की तह तक वह ज़रूर गया कि नेता यदि साठ पार करते ही मूर्ख हो गया, किन्तु उसको भरी जवानी में ही मूर्खता के साये ने घेर लिया है।

उसने अपनी साथिन की ओर ध्यान से देखा। वह उसके साथ हाथ हाथ मिलाती हुई चिपकी-सी खड़ी थी। इसी ने तो उसको पथ-भ्रष्ट किया। यदि वह अमीर बाप की लड़की न होती। तो वह उसके पीछे इस तरह दरबदर न फिरता रहता ! पैसों के सिवाय तो उसमें और कौन-सा आकर्षण है ! न उसको अक्ल है न शक्ल। वह तो हाथिनी की तरह मोटी-मोटी है। पैसों के लालच के कारण उसने अपनी उस हूरपरी को छोड़ दिया, वह गलत राह पर आ गया। उस लड़की में क्या कुछ नहीं था। सुन्दर ! शरीफ ! किन्तु उसका तो एक दोष ज़रूर था। वह एक चपरासी की लड़की थी और समाज ने यही कलंक उसके माथे पर मढ़ दिया था।

जाने वह किस सोच में पड़ गया। उसने अपने अन्दर खोखलापन-सा महसूस किया। अपने और नेता के कारतूतों में कोई फर्क नहीं दिखाई दी।

जलसा खत्म हो गया । लोग अपने-अपने घरों को जाने लगे। वह भी उसके साथ चल दिया। चलते-चलते उसकी सांस फूल गई। आँखों में अन्धेरा-सा छा गया । रास्ते से यह दिखाई ही न दिया कि कौन कहां जा रहा है। चारों तरफ अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई दिया।

शास्त्रों में अंधेरे को अज्ञानता कहा गया है। और अज्ञानता को अंधेरा। किन्तु वह इस समय अंधेरे की आंखों से उजाले को देख रहा था। इस देश के नकली रंग-कई प्रकार के इन्सानों को, उन इन्सानों को जो अपना उल्लू सीधा करने के लिए गरीबों का शोषण कर रहे हैं। उन इन्सानों को जो स्वार्थ और वासना के पीछे पड़े हुए हैं और उन गद्दारों को जो शीश-महलों में रहकर गरीबों की झोपड़ियों पर हमला कर रहे हैं।

वह दो-तीन कदम आगे बढ़ा । गर्दन घुमाकर जब उसने अपनी साथिन को देखा तो वह चौंक-सा गया। कहा—'अब कहां जायेंगे ?'

'जहां आपकी मर्जी'—उसका उत्तर था।

मैं चाहता हूं, अब हम पहले की तरह अपनी-अपनी राह पर वापस जायेंगे।

यह सुनकर उसको बहुत गुस्सा आया। उसका चेहरा तमतमाया, कहा—'पहले दल बदला, अब फिर उसी दल में वापस जाने का इरादा है ?'

उसने उसको इस तरह पकड़ा कि कहीं भाग न जाए। फिर सामने जाती हुई टैक्सी को इशारे से रोका। टैक्सी रुकते ही उसने उसको उसमें भरकर स्वयं उनके बगल में बैठ गई। ड्राईवर ने उसकी ओर आश्चर्य से देखा। और उसने कहा···'फंस गया तो तड़पना क्या ?'

खोयी चीज़ : मधुर एहसास

□

हर इन्सान का अन्त निश्चित है। अपने कर्मानुसार कुछ समय के लिए इस दुनिया में रहकर आखिर वह उसी का प्यारा हो जाता है। यह तो एक प्राकृतिक नियम है, जिसको इस पृथ्वी का कोई बेटा बदल नहीं सकता।'

गत तीन वर्षों से श्यामलाल हर एक के पास इन्हीं बातों को दोहराकर अपने-आपको तसल्ली देता। जीवन-मरण की व्याख्या करना तो वह दार्शनिकों की तरह जानता था और जब से सेदलक्ष्मी यह दुनिया छोड़कर चली गई, तब से हर पल वह सभी को इस भ्रम से निकालकर कहता कि उसने कुछ नहीं खो दिया है, अलबत्ता यह सब काल को करना था, इसको कौन टाल सकता है।

किन्तु दिन बीतने पर उसने धीरे-धीरे महसूस किया कि वह कोई चीज़ खो गया है। जीवन की एक अमूल्य चीज़। अपना जीवन-साथी।

ऐसी खोयी हुआ चीज़ क्या कभी किसी को वापस मिल सकती है ? नहीं, इस बात का उसको अच्छा-खासा ज्ञान था। किन्तु सौभाग्य से आज कुछ क्षणों के लिए उसको अस्थायी रूप से अपनी यह अमानत फिर वापस मिल गई। समय हमेशा आगे चलता है, किन्तु आज यह पीछे की ओर ठीक उसी प्रकार चलने लगा, जैसे कोई चीज़ किसी से चलते हुए हाथ से गिर पड़ी हो और बड़ी दूर निकल जाने के बाद उसे

उस चीज़ की याद आयी हो तथा फिर उसे खोजने के लिए चल दिया हो।

उसने कुछ क्षणों के लिए अपनी उस चीज़ को फिर से पा लिया। उसको देखकर आंखों से आंसू बह निकले। बदन में थरथरी-सी पैदा होने लगी। उसकी समझ में भी यह नहीं आया कि ऐसा क्यों? वह तो जीवन-मरण को भगवान की देन मानता था। जीवन में जीना और मरना निश्चित है, एक शाश्वत सत्य है। इसीलिए वह न तो किसी के जीने पर खुश हो जाता, न ही किसी के मरने पर शोक करता। किन्तु जो चीज़ वह खो गया था, उसको कुछ क्षणों के लिए पुनः पाकर यह उसको क्या हो गया—यही सोचकर न जाने वह यादों के किन बियाबानों में खो गया। तकिये के सहारे बैठकर उसकी आंखें छत की कड़ियों पर ऐसे टिक गयीं, जैसे वह छत को चीर कर नील-गगन का फैलाव देख रहा हो!

सेदलक्ष्मी का निधन हुए तीन वर्ष हो गये। पूरे तीन वर्ष! अब भी उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि ये तीन वर्ष कैसे बीत गये। दिनों की यह कम्पयूटर गिनती। समय की पुकार और भगवान की चाह—इन सबको टालना मनुष्य-मात्र से परे है। ये सब टल नहीं सकते। टल यदि सकता है तो वह है उसका प्रेम। किन्तु बूढ़ा होने पर हर आदमी के विचार बदलते रहते हैं और प्रेम—जो उससे प्रेम के साथ पेश आये, उसी पर वह बलिहारी हो जाने के लिए तैयार हो जाता और जो उसको नफरत करे, वह अपनी बची उम्र में उसका मुंह तक नहीं देखना चाहता। उसकी दशा उस दूध पीते बच्चे के समान हो जाती है, कि जब प्यार से पुचकारो तो खुश हो जाएगा, हंसेगा और जब थप्पड़ मारो तो इस तरह रोयेगा, मानो कोई ज़बरदस्त चोट लगी हो। जब मामूली-सी चीज़ खो जाये तो कहेगा, यही अमूल्य था और जब कोई चीज मिले तो उसको पूरी तरह सम्भाल कर रखेगा। इसीलिए तो कहते है न कि बच्चे बूढ़े एक समान हैं।

सेदलक्ष्मी का निधन हो गया। इस बात को अब तीन वर्ष हो गए। पूरे तीन वर्ष। जब उसके प्राण पखेरू उड़ गये, तो घर में सबों की आंखें आंसुओं से उमड़ आयीं। यार-दोस्त, सगे-संबंधी सब श्यामलाल को तसल्ली देने आये। सबों ने जाना कि अब वह बात-बात के लिए

दूसरों का मोहताज बनेगा। किन्तु श्यामलाल—उसको कोई शोक नहीं हुआ, उसने महसूस किया कि अब मैं आज़ाद हो गया हूँ। मैंने कुछ नहीं खोया है। पति-पत्नी तो आखिरी दमतक एक-दूसरे का साथ नहीं देते। किसी-न-किसी का निधन तो पहले हो जाता है, चाहे वह पति हो या पत्नी। तिस पर भी यह उसका सौभाग्य था कि अस्सी लांघकर मर गई। इस इस प्रकार मरने वाले लोग तो भाग्यवान होते हैं। बाल-बच्चे! सब कमाऊ! सरकारी कर्मचारी! इससे बढ़कर और क्या चाहिए! इसके विपरीत श्यामलाल यही कहकर दूसरों को तसल्ली दे देता। यही कहकर उसने सेदलक्ष्मी को प्राण-त्याग करते समय पानी के दो चम्मच पिलाये थे और यही सोचते वह उसकी अर्थी के साथ शमशान तक गया था।

वह अपने-आपको आज़ाद समझता था सुबह ग्यारह बजे घर से निकलना और शाम को वापस लौट आना! दिन को प्रताप-पार्क में पेंशन-बूढ़ों की टोली में सम्मिलित होना या किसी दिन दुकान पर बैठकर बहस करना। राजनीति से लेकर घर की समस्याओं पर उतर आना—यह तो श्यामलाल का नित्य नियम बन गया था, जब वह नौकरी में था, उस समय वह इतना व्यस्त नहीं रहता। उस समय वह चार बजे घर पहुँचकर पत्नी के साथ चुहल करता। किन्तु आजकल यदि कोई उसे मिलने आ जाता तो उसका घर में उपस्थित होने का सवाल ही पैदा नहीं होता! उसका इस प्रकार का रुझान देखकर सब नाराज़ हो गये। बाल-बच्चों को छोड़िए, सगे-संबंधियों को भी यह पसंद न था।

'इसको आज़ादी नहीं, उदासी कहते हैं।'—नाथा ने एक दिन उससे कहा।

'इसको न आज़ादी कहते हैं, न ही उदासी। ये तो बुढ़ापे में दिन गुजर-बसर करने के कुछ पल।'—श्यामलाल का उत्तर।

'अपने घर में ये दिन अच्छी तरह कट नहीं सकते? अपनी घर-गृहस्थी में'—नाथा ने कहा।

'घर गृहस्थी।'—यह सुनकर उसके सामने अपनी घर-गृहस्थी की सुन्दर-सी तस्वीर आंखों के सामने आयी—नाथा और उसकी पत्नी कमला, मोहन और उसकी पत्नी श्यामा तथा उनके बच्चे आदि। कुछ

समय तक अपनी इस गृहस्थी की सुन्दर-सी तस्वीर को आंखों के सामने लाकर वह चौंक-सा गया। उसने महसूस किया कि जो कुछ मैं करता हूं, वह तो सच ही ठीक नहीं। इससे समय बेकार नष्ट हो जाता है। नाथा का कहना सत्य है कि जो बाल-बच्चों वाला हो, उसको इस तरह आवारा फिरने की क्या आवश्यकता! सचमुच लोग इसको उदासी ही समझते होंगे। मगर उनका इस प्रकार सोचना सरासर गलत है। एकदम बेहूदा! मैं तो उदास नहीं हूं, बल्कि अब मैं आज़ाद हो गया हूं।

'आज़ाद'—उसके मुंह से यह शब्द अनायास निकला। आज तीन वर्षों की इस कालावधि के बाद उसको लगा कि मैं आज़ाद होने पर भी सभी का गुलाम हूं। बेबस और लाचार हूं। उसको पराये अपने लगने लगे और अपने पराये। खासकर पिछले तीन वर्षों से जो परिवर्तन उसने अपने घर में पाया, उसको देखकर वह सच ही काफी उदास था। उसने महसूस किता कि मैं अपना बहुमूल्य सरमाया खो गया हूँ—अपना जीवन-साथी!

किन्तु इस प्रकार का खोयी हुई चीज़ क्या किसी को पुनः वापस मिल सकती है? कभी नहीं! यह बात वह अच्छी तरह जानता था। खासकर इस बुढ़ापे में जब विचारों के बारीक धागे अकसर उलझ जाते हैं और ज़िन्दगी के सारे अरमान पूरे नहीं होते, उस समय यदि किसी को अपने जीवन-साथी से हाथ धोना पड़े, उसकी दशा उस तोते के समान होती है जिसके पंख काटकर पिंजरे में बन्द रखा गया हो। श्यामलाज ने जब बाहर आना-जाना बन्द किया, तो उसको लगा कि यही हालत उस की भी है। उसको कमरे की दीवारें काटने को दौड़तीं और जब कभी वह बाज़ार जाता तो कोई तसल्ली नहीं होती। वह एक आध घंटे बाद ही घर वापस आकर अपने कमरे में चला जाता। फिर रोज़ की तरह अकेलापन महसूस करता। और शाम को जब नाथा घर वापस आता तो सीधे अपने कमरे में चला जाता। मोहनजी का मत पूछिए! जब से वह बड़ा अफसर बन गया, वह यह भूल गया कि मेरा भी कोई बाप ज़िंदा है। यद्यपि दिन को बहुएं घर में ही होतीं, किन्तु वह उनको कभी-कभार ही देखता। वह भी उस समय जब खाना आदि देने के लिए

वे उसके कमरे में आतीं। वैसे तो उनको उसके साथ कौन-सा काम।

श्यामलाल हर दिन कमरे में अकेला बैठकर विचारों के इन्हीं बियाबानों में खो जाता कि मेरे साथ ही इतना परायापन क्यों है, मेरी सन्तान और मुझसे ही इतनी दूरी। मेरा मकान, मेरा घर और मैं ही इसमें एक अपरिचित की तरह रह रहा हूँ। मैं ही इस जेलखाने में बन्द हूँ।

जेलखाना—उसने एकदम महसूस किया कि मैं अपने कमरे में बैठा हूँ। कमरे की चारदीवारी और छत की कड़ियां! इसी में बैठा हूँ मैं। अकेला! सामने है गुड़गुड़ी, वह तो दिन में कई बार तम्बाकू पीता था, किन्तु उसमें अब वह बात नहीं रही। वह तो हर समय अन्दर-ही-अन्दर घुटता-सा महसूस कर रहा था, चाहता था किसी के साथ खुलकर बातें करे और अपने दिल का गुबार निकाले। जब से सेदलक्ष्मी का निधन हो गया, उसको हर काम के लिए दूसरों से मिन्नतें करनी पड़तीं। जितना उससे हो सकता, वह अपना काम स्वयं करता—गुड़गुड़ी में पानी डालने से लेकर कपड़े धोने तक, किन्तु एक मुश्किल तो ज़रूर हो जाती। वह यह कि उसके कमरे में स्थाथी रूप से कोई नहीं रहता, जिसके साथ वह बात करे। जब सेदलक्ष्मी इस कमरे में होती तो यहां सब आते तथा उसके साथ बातें करते। किन्तु आज वह सभी को पराया-सा लगता था। यह सब उसकी समझ में भी नहीं आता, ऐसा क्यों है? वह हर समय अपने-आपमें सोचा करता कि मैंने किसी से कुछ कहा तो नहीं। कोई तो मुझ पर नाराज़ नहीं। क्या बूढे की इज्ज़त पत्नी से ही बरकरार रहती है। क्या उसके बिना उसका कोई मूल्य नहीं। नहीं ऐसी बात नहीं। जीवन-मरण तो भगवान की देन है, इसको कोई नहीं टाल सकता। मृत्यु का समय तो निश्चित है, इसको कोई रोक नहीं सकता।—यही सोचते-सोचते उसने सिर में दर्द महसूस किया। उसको चाय पीने की तबीयत आयी। वैसे तो, उस समय दिन के चार बज चुके थे। उस समय यदि उसको चाय का एक कप नहीं मिलता तो, उसकी हालत मानो पागल हाथी की सी हो जाती। तो भी वह उस वक्त संयम में रहा। आशा थी कि कोई चाय का एक कप लेकर यहां ज़रूर आयेगा। वैसे तो हर दिन श्यामा चार बजे के करीब चाय का एक कप लेकर यहां आती। किन्तु

आज इतनी देर क्यों हो गई। पाँच भी बज गये, किन्तु आज तो मुझे पूछा ही नहीं। खैर तो है, इन सबकी। श्यामा आज कहां है?—वह यही सोचने लगा।

श्यामा—शोख, फैशनेबुल वाइफ! बड़ों की एक बात भी नहीं मानती वह। क्या भाग्य था पगले सोदजुव की इस बेटी का। मायके में इसको दो वक्त की रोटी नसीब नहीं थी और यहां नौकर-चाकर इसके कदमों में झुकते हैं। खैर, अपना-अपना भाग्य। मगर यहां तो वह खुद चाय का एक कप लेकर आती थी। आज वह क्यों नहीं आयी। खैर तो है उसकी। छः भी तो कब के बज गये। यह सीढ़ियों पर किसके चढ़ने की आहट हो रही है। ज़रा मैं भी तो देखूँ, क्या बात है?

श्यामलाल ने हाथ में छड़ी ली और बाहर आया। सीढ़ियां चढ़कर उसने ऊपर से एक ज़ोरदार कहकहा सुना। इसके साथ ही पुरुष-स्त्रियां एक-दूसरे से बात-चीत करते हुए। फिर प्यालियों के बजने की आवाज़ भी सुनायी दी। उसने अपने-आपसे सोचा कि यहां कोई पार्टी तो नहीं चल रही है। मुझे तो इसका पता ही नहीं। पता होता भी तो कैसे? जब से वह स्वर्गवासिनी यह दुनिया छोड़कर चली गयी, मुझे पता ही नहीं चलता कि ऊपर क्या कुछ हो रहा है! अब ये लोग मुझसे पूछते ही नहीं, जैसे मैं यहां का कोई नहीं—यही सोचकर वह छड़ी टेकते हुए ऊपर वाले कमरे के पास आ पहुँचा, उसने अन्दर झांककर देखा—वहां एक बड़ी मेज़ के आस-पास छः मर्द और स्त्रियां चाय की चुसकियां ले रहे थे और इनकी मेज़बानी श्यामा और मोहनजी कर रहे थे। ज्योंही वह दरवाज़े के पास आ पहुँचा, मोहनजी झट उठ खड़ा हुआ—

'ठहरिए'—यह कहकर वह कमरे के बाहर आया और बाप के कन्धे पर हाथ रखकर, फिर वापस जाने का संकेत करके उसके पीछे-पीछे हो लिया। यह सब देखकर श्यामलाल को आश्चर्य हुआ। अरे, यह जो अतिथियों के साथ बातें कर रहा था, मज़े में बैठा था और यह एकदम इसको क्या हो गया। कौन-सी आपत्ति होती यदि मैं भी इनके साथ बातें करता, उसी तरह जिस तरह उस स्वर्गवासिनी के होते हुए दूसरों के साथ करता था।—वह यही सोच रहा था कि मोहनजी नीचे उसके कमरे तक हो

लिया और बाद में बिना पूछे ऊपर चला आया।

इतने में ऊपर से एक बार फिर कहकहा सुनाई दिया। कोई स्त्री श्यामा से पूछ रही थीं—'दरवाज़े पर ये साहब कौन थे?'

'ये हमारे नौकर हैं। काम तो समय पर करते हैं, मगर दुर्भाग्य से नीम-पागल हैं।'—श्यामा का उत्तर।

'तो इन्हें यहां आना चाहिए था। ये नीम-पागल भी बड़ी मज़ेदार बातें करते हैं।'—कोई स्त्री बोली।

श्यामलाल ने इन सभी बातों को ध्यान से सुना। फिर झट अपने कमरे में घुसकर दरवाज़ा बन्द किया। वहां वह अपनी चारपाई पर लेट गया। उसकी नज़र एकदम पत्नी की फोटो पर पड़ी। आंखों से अश्रुधारा बह निकली जो कुछ मिनट तक रुकी ही नहीं।

उस समय उसको अपनी खोई हुई चीज़ का एहसास हो गया। वह 'पागल' शब्द सुनकर ही पागल हो गया। वह दीवारों के साथ बातें करने लगा तथा पागलों की तरह अपने जीवन-साथी को इसी कमरे में ढूंढ़ने को बेचैन हुआ मानो कोई अनमोल चीज़ गुम हो गई थी, जिसको वह पाने की चेष्टा में था। वह पागलों की तरह पत्नी को पुकारने लगा। आखिर में उसने उसका फोटो दीवार से उतारकर उसको सीने से लगाया। कुछ समय तक उसके साथ उसी तरह बातें करने लगा, जिस प्रकार पत्नी के साथ करता था। और इसी के साथ कुछ क्षण के लिए उसको यह एहसास हुआ कि उसने अपनी चीज़ फिर से पा ली है, मानो रास्ते में कहीं गुम हो गई थी और किसी स्थान पर जाकर उसको मिल गई। उसने फोटो को एक बार फिर सीने से लगाकर उसके कई चुंबन ले लिये। इतने में किसी ने एकदम दरवाज़ा खोला। यह श्यामा थी। श्यामलाल को इस प्रकार देखकर वह पहले चौंक-सी गई, फिर होंठ विकृत करके दरवाज़े को फिर बन्द किया। श्यामलाल ने जब बहू को देखा, तो उसके हाथ से फोटो एकदम नीचे गिर गया, मानो इस बात का एकदम एहसास हो गया उसे, कि यह जो मैं कर रहा हूँ, सब पागलपन है। दरअसल जो मर जाता है, वह फिर कभी वापस नहीं आता।

●

सौग़ात

□

हां, यह वही पत्थर है जो न जाने कब से हमारे ठाकुरद्वारे में है। चपटा-सा और चौरस ! लगभग दो गज़ लम्बा। शिवलिंग के दायें ओर लकड़ी के एक बड़े फ्रेम के सहारे टिका हुआ ! इसके चारों ओर फूल-पत्तियों का भव्य अलंकरण है जो अब कहीं-कहीं घिस गया है। फिर भी ये फूल-पत्तियां बहुत सुन्दर हैं। पार्श्व में स्याही है। पास वाले भाग में तीन चित्रों का चित्रांकन किया हुआ है। पहला चित्र एक नन्हें से बालक का है, जो गोद में सिमटा निश्चिन्त रूप से अपनी माता के स्तनों से दुग्धपान कर रहा है। दूसरे चित्र में एक स्त्री और पुरुष की आलिंगन-बद्ध आकृतियां खुदी हुई हैं और अंतिम में किसी का आखिरी सफर—चार-पांच आदमी एक शव को कपाट पर लिटाकर शमशान की ओर ले जा रहे हैं और उसके पीछे-पीछे कई शोकाकुल जन ! उनको देखकर ऐसा लग रहा है कि ये अपने किसी प्रिय को विदा कर रहें हैं।

यह चौरस-पत्थर आज भी हमारे ठाकुरद्वारे में है। छोटी उम्र से लेकर आज तक मैं इसको यहीं देखता आया हूं। वैसे, तब से आज तक यहां दीवारों की खूंटियों पर टंगे पुराने कैलेण्डरों के स्थान पर नये कैलेण्डर लगा दिये गये या ताक पर रखी मूर्तियों में कुछ विविध आकार-प्रकार की कलामय मूर्तियों की बढ़ोतरी की गयी, किन्तु यह चौरस-पत्थर अपने स्थान पर से कभी न हटाया गया। यह जहाँ था, अब भी

वहीं हैं।

घर में सर्वाधिक ज़्यादा चहल-पहल इसी कमरे में रहती है। खास-कर सुबह दस बजे तक। कोई आकर टीका लगता है, तो कोई अपने दोनों हाथों में कहीं से रंगारंग फूल लाकर शिवलिंग पर चढ़ाता है। कोई सुबह से यहीं बैठकर गीता के आठों अध्याय समाप्त करता है। इस प्रकार यह ठाकुरद्वारा हमारे घर का मंदिर बन गया है। छुटपन से ही मैं यहां बड़े शौक से आता था। इसलिए नहीं कि यह ठाकुरद्वारा है और यहां भगवान की पूजा होती है। बल्कि इसलिए कि यहां रंगारंग मूर्तियां हैं—कलापूर्ण तथा आकर्षक। मूर्तियां क्या होती हैं तथा मूर्तिकला किसे कहते हैं—यह न में उस समय जान पाया था न आज ही इसका ज्ञान है। अलबत्ता यह बात तो ज़रूर थी कि उस समय मैं इन मूर्तियों को बड़े ध्यान से देखता, खुश हो जाता तथा मचल उठता था। किन्तु ज्यों ही दिन बीत गये, में सोचने लगा कि यह चौरस पत्थर यहां किस लिए है? इस बड़े भारी-से पत्थर को यहाँ रखने की क्या तुक ? इसने ठाकुरद्वारे की एक-तिहाई जगह घेर रखी है ! यह न किसी देवी-देवता का आकार, स्वरूप है, न ही यहां इसकी पूजा होती है। इस पर जिन-जिन चित्रों का रेखांकन किया हुआ है, उन्हें देखकर पूजा करने को दिल नहीं करता।

कितनी बार मेरे दिल में आया कि इस चौरस पत्थर को ठाकुरद्वारे से बाहर निकाल दूं। लेकिन इसको छूने में डर-सा लगा। न जाने ऐसा क्यों हो रहा था ! शायद इसलिए क्योंकि यह मेरे पिताजी को जान से भी प्यारा था।

एक दिन पूजा करने के बाद जब मेरे पिताजी ठाकुरद्वारे से बाहर आ गये तो मैंने उनको यों ही कहा—'पिताजी ! इस चौरस-पत्थर पर यह चित्रांकन किसने किया है ? इस पर नज़र पड़ते ही दिल पर एक अजीब असर होता है।'

मेरे पिताजी तबीयत के कुछ तेज़ थे। उन्होंने गुस्से में कहा—'क्यों ?'

'मैं सच कहता हूं पिताजी ! इसको देख पूजा करने में दिल नहीं लगता। जिस श्रद्धा के साथ पूजा करनी होती है, इस पर अंकित चित्रों

को देखकर वह नहीं रहती'—मेरा उत्तर था।

यह सुनकर पिताजी ने पहले मेरी तरफ देखा, फिर मां की ओर नज़र दौड़ायी। कहने लगे—'यह चौरस-पत्थर मेरे अपने पिता की एक मात्र निशानी रह गयी है जो वह अपने पीछे छोड़ गये है। यही तू यहां से हटाने के लिए कहता है?'

'लेकिन आवश्यकता भी क्या है इसके यहां रखने की। इस पर यह बेहूदा चित्रालंकरण मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता'—मैं दरजवाब बोला।

यह सुनकर पिताजी को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने मेरे गाल पर एक चपत मारी। कहने लगे—'अच्छा क्यों नहीं लगता?'

मैंने उन्हें कुछ नहीं कहा। केवल आंखें झुकाकर नीचे फर्श की ओर देखने लगा। मां ने मेरी तरफ देखा। वह थर-थर कांप गयी। गुस्से में पिताजी का मुंह लाल-लाल हो गया, मानो किसी ने उस पर लाल स्याही पोत दी हो। यह देखकर मैं कांप उठा। मैं धीरे-धीरे मां की बगल में बैठकर नीचे सिर झुकाये सोचने लगा कि आखिर मैंने ऐसी कौन-सी बात कही है कि पिताजी को इतना गुस्सा चढ़ गया। इस बीच पिताजी कमरे से बाहर चले गाये तो मां ने कहा—'तू क्यों बार-बार इनको यह चौरस पत्थर ठाकुरद्वारे से बाहर निकालने के लिए कहता है?'

अब की बार मैंने मां पर गुस्सा थूका। मैं गरज उठा—'हाँ, कहता हूं और बार बार कहूंगा। मैं तो सच कहता हूं और ये एकदम गर्म हो जाते हैं, आजकल सच बोलना पाप है और झूठ बोलना पुण्य।'

'तो फिर सच कहते ही क्यों हो?'—मां ने कहा।

'झूठ नहीं बोलता मां। लेकिन मुझसे रहा नहीं जाता। ज़रा आप ही बताइये मां, हमारे घर में क्या कोई ऐसी जगह नहीं रह गयी जहां पर यह चौरस-पत्थर रखा जाता! ठाकुरद्वारे में इसके रखने की क्या आवश्यकता! माना कि यह पत्थर है। मगर यह तो किसी देवी-देवता का आकार-स्वरूप तो नहीं कि इसकी पूजा करनी है। ऐसा कुछ नहीं है इसमें। तिस पर भी देखो, क्या चित्रालंकरण किया हुआ है इस पर! मां की गोद में बच्चा सिमटकर उसके स्तनों से दुग्ध-

पान कर रहा है, स्त्री और पुरुष आलिंगनबद्ध और वह भी नंगे... वाह! वाह! क्या इसी की पूजा करते हैं पिताजी?'

यह सुनकर मां पसीनों से तरबतर हो गयी। वह कुछ न कह सकी। एकदम गूंगी-सी हो गयी। फिर उठी और कमरे से बाहर आ गयी। मैं यहां अकेला रह गया। कुछ क्षण पश्चात् मेरी आंखों के सामने वह पत्थर आया—स्याह! चपटा-सा और चौरस! चारों ओर फूल-पत्तियों से अलंकृत! सामने तीन चित्रों का अंकन। पहले चित्र में एक नवजात शिशु मां की गोद में सिमटकर उसके स्तनों से मज़े में दुग्धपान कर रहा है। दूसरा चित्र स्त्री-पुरुष का है जो एकदम नंगे हैं तथा एक दूसरे के बाहु-पाश में बद्ध चुंबन ले रहे हैं तथा तीसरे अंतिम चित्र में किसी की अर्थी ले जा रही है। इसके पीछे-पीछे लोगों का एक बड़ा कारवां है।

समय को सच ही पानी का बहता दरिया कहा गया है। इसके बहते हुए पानी को रोकना किसी के बस की बात नहीं। अभी आज और अभी कल। दिन-रात के इस मिलन से इस बात का पता ही नहीं चल सकता कि कब महीने गुज़र जाते हैं और कब सालों-साल बीत जाते है। यह सिल-सिला चलता है और हमेशा के लिए चलता रहेगा। इसी चलते सिलसिला में एक दिन मेरी समझ में नहीं आया कि अचानक यह क्या हो गया। घर में सब सुन्न होकर रह गये। मैंने दायें-बायें देखा, घर में देखते-देखते हाहाकर मच गयी। सब चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। रोने का इतना शोर हो गया कि रात के उस गहन अंधकार में पक्षी भी पंख फड़फड़ाते हुए अपने घौंसलों से बाहर निकल आये। घर में मातम छः गया और मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया। इतने में सब सम्मिलित हो गये, सारा परिवार। यार दोस्त—कुछ सच्चे, कुछ झूठे। घर में एक मर्द की कमी हो गयी और वह अपने साथ घर की रौनक भी साथ ले गया।

मेरे पिताजी अधिक समय तक बीमार नहीं रहे। बीमार होने के मात्र छः घंटे बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया।

पिताजी के इस दुनिया से चले जाने के बाद मुझपर मानो वज्र-स गिर पड़ी। मैं यह जान ही न सका कि अब मेरा भविष्य क्या होगा। लेकिन समय का चलता दरिया आखिर सबका पथ-प्रदर्शक बन जाता है। आज मुझे ऐंसा लग रहा है कि पिताजी के इस दुनिया से चले जाने से मेरे जीवन का एक नया अध्याय शुरु हो गया है। एक नयी दुनिया ! एक नया वातावरण ! मुझे सब कुछ नया-नया-सा दिखने लगा।

पिताजी के स्वर्गवास होने के बाद घर का प्रधान अब मैं ही बन गया। माता ने मुझे उनकी अल्मारी की कुंजी दे दी। इसमें कुछ कपड़े तथा कुछ कागज़ात थे—मकान के कागज़ात, माल-सम्पत्ति से संबंधित कुछ कागज़ात।

एक दिन मैंने अल्मारी खोली—अपने किसी मरे हुए प्रिय की चीज़ों को, जिन्हें उसने अपने हाथों सम्भालकर रखा हों, को देखकर आंखें गीली हो जाती हैं। कभी उन चीज़ों पर प्यार आता है कि ये उसकी थीं, कभी नफरत, कि उसने दगा दे दी। अपने प्रिय की ये चीज़े कितने प्यार से देखी जाती हैं मानो उसकी आत्मा इन्हीं में छिपी हुई हो। मुझे भी पिताजी की ये चीज़ें देखकर ऐसा ही महसूस हुआ। कौन-सी चीज़ कब खरीदी थी, कहाँ खरीदी थी, कितने शौक से ली थी। यह कोट-पतलून कितने चाव से पहनते थे ! सिर पर यह रंगदार पगड़ी कब बांधते थे ! यह मकान कब बनवाया था ! इसके कागज़ात भी इसी अल्मारी में थे और इसके साथ ही दो-चार ऐनक भी जो कभी-कभी वे लगाते थे।

इन सभी चीज़ो को देखकर भी मेरा ध्यान इन सबकी ओर नहीं गया। मैंने इसमें से केवल मकान के कागज़ात निकाले। ये सब एक बड़ी फाइल में सलीके के साथ रखे हुए थे। फाइल खोलकर ज्यों ही मैं इन कागज़ात को पढ़ने लगा तो पहले ही पृष्ठ पर पिताजी ने मकान के संबंध में वसीयत की थी। कब ? यह न मुझे पता है न ही मेरी माता को। इसमें उन्होंने मकान को दो भागों में बांटा है। जो भाग मेरे नाम लिखा है, उसके अन्तर्गत ठाकुरद्वारा भी आता है। अंत में लिखा है कि मुझे पूरी आशा है कि मेरे स्वर्गवास होने के बाद मेरी की हुई वसीयत पर अमल होगा।

'ठाकुरद्वारा' पढ़ते ही मैं चौंक-सा गया। आंखों के सामने एकदम वह पत्थर आया—स्याह, चपटा और चौरस। चारों ओर फूल-पत्तियों से अलंकृत ! सामने तीन चित्रों का चित्रालंकरण !

पिछले कुछ वर्षों से मैं इस ठाकुरद्वारे में पूजा करने नहीं आता था। इस चौरस-पत्थर को देखकर मुझे यहां पूजा करने में मन की शान्ति नहीं मिलती। यही कारण है कि मैं मंदिर में जाकर ही भगवान की पूजा करता था।

कुछ दिन इसी तरह बीत गए। आखिर मैं एक दिन ठाकुरद्वारे के अन्दर आया। वैसे तो मैं यहां यह चौरस-पत्थर हटाने के लिए आया, तभी तो मुझे मन की शान्ति मिलती थी न ! तभी भगवान की पूजा-अर्चना करने में दिल लगता। मैं अपने आपसे सोचने लगा कि उस पूजा करने का क्या सार जब दिल कहीं हो और दिमाग कहीं ओर। यह तो भगवान के साथ मखौल करने के बराबर होगा। हां, यदि यहाँ पूजा करूंगा तो पहले इस चौरस-पत्थर को हटाना ही होगा।

मैं ठाकुरद्वारे के अन्दर आया। मेरी नज़रे एकदम चौरस-पत्थर की ओर गयीं, लेकिन यह क्या ! इसको जमीन पर इस तरह किसने लिटाया है ? मैंने जीवन में पहली बार इसको इस तरह पड़ा देखा। बहुत आश्चर्य हुआ मुझे। मैंने मृगछाला बिछाया तथा इस पर बैठकर पूजा करने में मन लगाने लगा। लेकिन मेरा ध्यान इस चौरस-पत्थर की ओर था। यह उल्टा लेटा हुआ था। इसका पिछला भाग मुझे साफ दिख रहा था—काला स्याह !

मैंने पूजा खत्म की। फिर उठा और मृगछाला को लपेटकर अपने स्थान पर रखा। इसके बाद चौरस-पत्थर की बारी आयी। मैंने इसको यहाँ से हटाने की सोच ली। इसको यहाँ से हटाने से ही एक बला यहाँ से हट जायेगी ! क्या जरूरत है इसकी इस कमरे में ! मैंने उसकी ओर एक बार फिर ध्यान से देखा। फिर इसको दोनों हाथों से उठाया लेकिन···इसके नीचे यह कागज़पुर्जा ! यह क्या है ! मैं एकदम चौंक-सा गया। मैंने उसको फिर उसके स्थान पर रखा और मेरे कांपते हाथ इस पुर्जा की ओर बढ़ गये मैंने इसको खोला। लिखा था—

प्यारे बेटे,

मेरा निधन होने के बाद यह चौरस-पत्थर अपने स्थान से नहीं हटाना। इस कमरे में जो भी कलामय मूर्तियां हैं, उन सबसे बढ़कर मुझे यह चौरस-पत्थर अच्छा लगता है। मेरे बाद यह तुम्हारे हवाले है। इसकी सुरक्षा करना, पूजा करना। उस दिन तुमने पूछा था न कि इस पर जिन चित्रों का अंकन है, वे बेहूदा हैं। मगर मैं क्या कहता तुमको उस दिन, इन चित्रों का राज क्या है! तुम तो नन्हे बालक थे उस समय तुम कुछ नहीं समझ सकते थे। मगर आज समय तुम्हें समझायेगा कि ये चित्र क्या हैं—ये जीवन के तीन दौरों के स्पष्ट उदाहरण हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापा तथा इसके साथ ही जीवन का अन्तिम सफर। मतलब जहाँ से मनुष्य आता है, वहीं उसको जाना है। यही तो है जीवन की वास्तविकता। इसी को पूजना है। जीवन के बाद जो जीवन की इस वास्तविकता को समझ नहीं पाता, वह तो कुछ नहीं समझ सकता।"

हां, यह तो वही पत्थर है—स्याह! चपटा-सा और चौरस! लकड़ी के बने एक फ्रेम के सहारे खड़ा किया हुआ। चारों ओर फूल पत्तियों से अलंकृत। पास में तीन चित्रों का चित्रालंकरण! पहले चित्र में एक नन्हा-सा बालक मां की गोद में सिमटा निश्चिन्त रूप से उसके स्तनों से दुग्धापान कर रहा है। दूसरे चित्र में स्त्री और पुरुष की आलिंगबद्ध आकृतियों का अंकन है तथा तीसरे और अंतिम चित्र में किसी का अंतिम सफर! आज यह चौरस पत्थर हमारे ठाकुरद्वारे में उसी तरह खड़ा है जिस तरह पहले था यह एक सौगात है जो पिताजी अपने पीछे मेरे लिए छोड़ गए हैं।

पराजय

'हां, यह तो मैं उस दिन समझ गया कि पवित्रता, उदारता या सुन्दरता का संबंध हर्गिज़ मनुष्य-मात्र की उस क्रिया से नहीं, जिससे इन गुणों का स्तर समझा जाता है'—करीम कहता गया—'दरअसल बात यह है साहब, मनुष्य ज़ाहिरी तौर पर पवित्र होने पर भी अति दुश्चिरित्र हो सकता है, बहुत नेक होने पर भी बदकार बन सकता है, बहुत सुन्दर होने पर भी बदसूरत हो सकता है और बहुत उदार होने पर भी कमीनेपन का रूप धारण कर सकता है! इन सभी बातों का मैंने उस दिन अपने आप में परखकर देख लिया है। मैं मानो गहरी नींद से बेदार हो गया और उसी बेदारी की सी हालत में मुझे लगा कि मेरी आत्मा को किसी ने झुलस दिया, अंह को नष्ट कर दिया तथा व्यक्तित्व के परखचे उड़ा दिये। और साहब, आज भी मैं जान नहीं पाता कि उस समय मुझे क्या हो गया था। किस वितृष्णा के अधीन मैं ऐसा करने के लिए विवश हो गया और सोचता हूं साहब, यदि मैंने ऐसा किया तो मुझमें इतना फीकापन क्यों! मुझमें एक प्रकार की पराजय भावना सी क्यों उत्पन्न हो गई है और मैं अपने-आपको नंगा-सा महसूस करने लगा हूं। एकदम नंगा!'—अपने चेहरे पर गोल-गोल पसीनें की बूंदें पोंछकर और दायें हाथ की उंगलियों में बचे हुए सिग्रेट का अंतिम कश खींचकर करीम फिर बोला—'यह मत समझिए कि मेरे मन में उसके प्रति एक भूख जग गयी थी उसके शरीर

को पाने की भूख ! ऐसी कोई बात नहीं थी। फिर भी कह नहीं सकता कि उस समय मुझे यह क्या हो गया ! नस-नस में आग-सी क्यों निकल गई ! दिल क्यों धड़कने लगा और मैंने उसे···। हां, यह उस दिन की बात है साहब ।'

'बस छोड़ो अब, आज इतना ही ।'—मैंने कहा ।

'अच्छा, मर्ज़ी आपकी । रहने दो । आज इतना ही ।'—करीम ने जलते हुए सिग्रेट का बचा हुआ टुकड़ा खिड़की में से बाहर फेंक दिया । फिर उठा, अपने डेरे पर जाने को तैयार हुआ । मैंने सामने दीवार पर लगी क्लोक पर दृष्टि घुमा दी । रात के दो बजे गये थे । मैंने बड़बड़ाने के ढंग में कहा—'बात-बात में बहुत रात हो गई। सो जाइये । कल मिलेंगे ।'

'हां, कल तो मिलना ही है साहब'—कहते हुए करीम लड़खड़ाते पांव तथा आवारगी-सी हालत में धीरे-धीरे सीढ़ियां उतरता हुआ चल दिया । शायद मैं इसी की प्रतीक्षा में था कि कब वह बातों का सिलसिला काट कर यहां से चला जाये । मैं उठा और कमरे का दरवाज़ा बन्द करके बत्ती बुझायी और आराम से सो गया ।

दूसरे दिन सुबह सात बजे दरवाज़ा के खटखटाने की आवाज़ हुई । मैं आंखें मूंदकर पलंग से उतर गया । फिर दरवाज़ा खोलकर देखा—यह तो करीम था ।

'आज बहुत देर तक सोते रहे साहब'—उसने कहा ।

मैंने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। केवल आंखें मलता रहा ।

'क्यों साहब, इतनी नींद ?'—उसने फिर कहा ।

'कल रात देर तक जागता रहा न, इसीलिए'—मेरा छोटा-सा उत्तर ।

इतने में उसने गर्म पानी रखने की व्यवस्था कर ली । मैं नहाया और एक घंटे पश्चात् तैयार होकर आफिस की ओर चल दिया । जब मैं दरवाज़े से बाहर आया तो करीम चौंककर बोला—'कहां जा रहे हो साहब ?'

'दफ्तर'—मैंने कहा।

'अभी कितने बज गये ?'—यह कह उसने दायें हाथ की कलाई को मोड़कर घड़ी पर दृष्टि घुमायीं और बाद में अपने आपसे बोला—'आठ !'

'हां आठ बज गये । आध घन्टा दफ्तर पहुँचने में लगेगा ।'—मैंने कहा और दफ्तर आने को तैयार हो गया ।

'चलो, मैं भी साथ चलता हूँ ।'—उसने कहा ।

'नहीं, कोई ज़रूरत नहीं ।'—मैंने यों ही कहा ।

'क्या कहते हो साहब'—यह कहकर वह झट उठ खड़ा हुआ और मेरे साथ हो लिया । तो पहले बहुत गुस्सा आया उस पर । किन्तु साथ ही सोचा कि चलो ऐसा भी ठीक रहेगा क्योंकि मैं यहां नया-नया आया था । आज पहली बार दफ्तर जाना था। दफ्तर की 'बिलिंडिग' भी पता नहीं थी, कहां है । इसलिए मैंने सोचा कि यही उपयुक्त आदमी है जो वहां तक मेरा मार्ग-निर्देश करेगा। मैंने उसको अपना अटैची दिया और चला । रास्ते में मैंने उसके साथ एक बात भी नहीं की । वह मैं आगे-आगे और पीछे-पीछे तेज़ी से पग बढ़ाता हुआ चलता रहा। गांव का छोटा-सा बाजार ! तारकौल से पुती हुई एक पक्की सड़क जिसके दायें-बायें कहीं पक्के मकान दिखते हैं तो कहीं घास-फूस की इकमंजिली झोंपड़ियां । और इसी सड़क पर आगे की ओर देखिए तो दूर से एक घना जंगल नज़र आयेगा ! कई प्रकार के हरे-भरे वृक्ष, असंख्य ! सड़क पर से जंगल का यह दृश्य मनोरम लगता है । चलते-चलते मैं मन ही मन इस मनोहारी दृश्य का आनन्द लुट रहा था कि पीछे से करीम दौड़कर मेरे पास आया और मुझे रोककर कहने लगा—'ठहरो साहब, ज़रा इस झोंपड़ी को भी देखो न ।'

उसका इस तरह अचानक रोकना मुझे अच्छा नहीं लगा । फिर भी मैंने संयम से काम लिया । पूछा—'कौन-सी झोंपड़ी ?'

उसने दायें ! हाथ से संकेत करते हुए कहा—'उस झोंपड़ी को देखो साहब ! इसी में नसीमा रहती थी और मैं इसके पास वाली झोंपड़ी में । देख लो न । फिर न कहना, मुझे क्यों नहीं दिखाया !'—इस समय वह

बद्हवासी की सी हालत में कहने लगा।

मैंने उस झोंपड़ी को ध्यान से देखा और करीम ने मेरी ओर। इसके बाद वह आंखें फैलाकर कहने लगा—'देखा न, इसी झोंपड़ी में वह अंतिम घटना···।'

मैंने बात को काटकर पग आगे बढ़ाये, कहा—'चलो, आगे चलते हैं।'—उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ा ओर एक पराजित आदमी की तरह लड़खड़ाता हुआ मेरे पीछे-पीछे हो लिया। इस गांव में बहुत समय तक रहने के कारण वह सभी की निगाहों में हंसी का पात्र बन गया था। और सड़क पर मेरे साथ देखकर जब कोई हमें देखता तो उनमें यह जानने की जिज्ञासा बढ़ जाती है कि मैं कौन हूं! मेरा उसके साथ क्या संबंध! और न जाने उनके मानस-पटल पर कितनी बातें छा जाती हैं। सब मेरी ओर आश्चर्य से देखते जिससे मुझमें भी यह जानने की उत्सुकता बढ़ गयी कि ऐसी बात क्या है इसमें जिससे वह सभी की निगाहों में पतित सा बनकर रह गया है! मैं यही सोच रहा था कि सामने चौराहा आ गया यह गांव का बस-अड्डा है! सौ, सवा-सौ दुकानें हैं गांव वाले यहां सौदा-सुल्फ करते हैं। यहीं पर जब मैंने सामने देखा तो एक बड़ी 'बिलिडिंग' नज़र आयी। इसी पर मेरे दफ्तर का एक बोर्ड चिपका हुआ था। मैंने पीछे की ओर देखा, करीम बराबर मेरे पीछे बढ़ाता हुआ चल रहा था। मैंने उसको रोक कर कहा—

'बस शुक्रिया। यही मेरा दफ्तर है न! अब आप जा सकते हैं।'

उसने एक बार फिर दीर्घ निःश्वास छोड़ा। जब मैंने उससे अटैची ले ली तो उसने कहा—'अच्छा, शाम को···।'

उससे बिना कुछ कहे मैं दफ्तर की 'बिलिडिंग' में आ गया। इस की भी कोई परवाह नहीं की कि वह कहां जायेगा! किन्तु मेरे मन में उसकी तस्वीर अब पूरी तरह छाने लगी, छः फुट का एक दुबला-पतला आदमी! सिर पर तुर्कमान टोपी! उसने शलवार, फिरन पहन रखा था! और दाड़ी तो कई महीनों से नहीं बनायी थीं मैंने सोचा, यह जो सूरत उसने बनाई है। क्यों, किसलिए? कभी-कभी पागलों की तरह बातें करना, आंखें फैलाना और घंटों बैठकर विचारों के बयाबानों में खो जाना! और कभी-

कभी ऐसी बातें करना, दार्शनिकों की तरह···कोई न कोई बात तो इसमें ज़रूर है और तो यह पागल नहीं जैसा कि मैं इसके संबंध में सोचता रहा हूं। मेरे मन में उसके प्रति सहानुभूति सी जग गयी। न जाने ऐसा क्यों हुआ यह मेरी समझ में भी नहीं आया। अब तब उसने मुझे जो कुछ भी भी बताया था, वे सारी बातें याद आयीं। मेरा यहां आना···उसके साथ···और···

मैं वन-विभाग में काम करता हूं। कुछ दिन पहले मुझे विभाग के 'श्रीनगर हेड़ आफिस' से आदेश मिला कि यहाँ आकर घने जंगलों से चोरी हुई लकड़ी के संबंध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करुं क्योंकि शायद इन केसों को निपटाने में उक्त विभाग को मेरे सिवाय और कोई विश्वसनीय आदमी उपलब्ध नहीं था। वैसे तो, मुझे यहां आने की कोई इच्छा नहीं थी। किन्तु 'श्रीनगर हेड़-आफिस' में दस वर्ष बराबर काम-करते मैं उकता गया था। मैं अब परिवर्तन चाहता था। और फिर यहां रहना भी कितने दिन! ज़्यादा से ज़्यादा बीस या पच्चीस दिन बस! ऊबने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए तो मैं यहां आया। बस-अड्डे पर जब गाड़ी लगी तो शाम के छः बज चुके थे। बस की छत से सामान उतारकर मैं असमंजस की स्थिति में खड़ा हो गया। इतने में करीम मेरे सामने खड़ा होकर बोला—'माफ कीजिएगा। आपका नाम विजयकुमार तो नहीं?'

'हां, मैंने आश्वस्त होकर कहा। किन्तु इस बात का आश्चर्य तो ज़रूर हुआ कि इसको मेरा नाम कैसे मालूम? इससे पहले कि वह मुझसे कुछ और पूछता, उसने कहा—'चलो, मैं आपका सामान लिए चलता हूं।'

'कहां?'—मैंने आश्चर्य से पूछा।

'यहां के डाक-बंगले में। हां साहब, यहां के डाक-बंगले में'—उसने आवारगी की सी आवाज़ में कहा। उसको देखकर तथा उसका तकिया-कलाम सुनकर मुझे लगा कि कहीं यह चोर या ठग तो नहीं। किन्तु

उसने एक बार फिर मेरी ओर देखकर कहा—'क्या सोचते हो साहब ?'

मरता क्या न करता । मैंने कहा—'अच्छा, ले लो ।'

'हां साहब ! अभी-अभी आफिस से मुझे सूचना मिली कि आप यहां आयेंगे और ड़ाक-बंगले में ठहरेंगे'—उसने कहा ।

यह सुनकर मैं कुछ आश्वस्त हुआ कि वह विभाग का ही आदमी है । मैंने कहा—'चलो ।'

इसके बाद उसने मेरा बिस्तर और अटैची कंधे पर उठाया और चलने लगा । मैं भी उसके पीछे-पीछे हो लिया । ड़ाक-बंगले में पहुँचने के बाद उसने मुझे वह कमरा दिखाया जिसमें विभाग ने मेरे रहने की व्यवस्था की थी । चूँकि उस दिन मैं बहुत थक गया था, इसलिए शाम का खाना खाने के बाद ही मैं पलंग पर लेट गया । अभी मेरीं आंखें लगने ही वाली थीं कि करीम कमरे में घुस आया । मैंने आंखें खोलीं किन्तु बिस्तर पर उसी तरह लेटा रहा । वह मेरे पास आकर पांव सेहलाता रहा । इस बीच हम जंगल में हुई लकड़ी की चोरी पर बातें करते रहे । बाद में न जाने उसको यह क्या हो गया ! उसकी आंखें चमक गयीं और वह देखते ही देखते न जाने यादों के किन बयाबानों में खो गया ! इसके बाद वह कमरे से बाहर चला गया, बिना पूछे, बिना कहे । उस समय मुझे उसका इस प्रकार का व्यवहार बहुत बुरा लगा । कैसा आदमी है यह ! यह पागल तो नहीं ! किन्तु इसमें पागलपन के आसार तो नहीं दिखते । बातें तो वह काम की करता है । मगर उसको यह अचानक क्या हो जाता है !—यह सब बातें मेरे मन-मस्तिष्क में प्रश्न-चिह्न बन गयीं । और जब बाद में हर दिन मैंने उसको इसी हालत में देखा तो मेरी जिज्ञासा बढ़ गयी यह जानने के लिए कि उसको यह जो विकार हो जाता है, वह किसलिए ? और इसीलिए तो मैंने एक दिन निश्चय किया कि उसको पूछ लूँ कि ऐसी क्या बात है ! किन्तु साहस नहीं हुआ ।

कुछ दिन बाद जब वह मेरे पास आया तो मुझसे रहा न गया । मैंने उसको सब कुछ कहने के लिए बाध्य किया । पहले उसने कुछ कहने से टालने की कोशिश की, किन्तु जब मैंने उसको आश्वासन दिया कि जो कुछ वह कहेगा, मैं उसको अपने तक ही सीमित रखूँगा तो वह एकदम

खुल गया । तीन दिनों से मैं शाम के समय उससे सुनता रहा हूं । उसने बताया—

'यह सारा गांव आज से तीस वर्ष पूर्व इतना सम्पन्न नहीं था जितना आज है । उस समय इतने बड़े एवं पक्के मकान नहीं थे यहां । बस, ले-दे के कुछ झोंपड़ियां थीं, कुछ दुकानें थीं और कुछ नहीं । ये सारे नये मकान जो यहां बने हैं, वह मानो कल की बात है । और जिन रही-सही झोंपड़ियों को आप देखते हैं, आजकल उनमें वही लोग रहते हैं जिनपर आजादी की स्वर्ण उषा अभी मेहरबान नहीं हुई है । बस, उनको दो वक्त की रोटी चाहिए । इसीलिए तो ये सुबह से शाम तक काम करते हैं । मर्द खेतों में काम करते हैं, औरतें ऊन कातती हैं, कपड़ा बनाती हैं । सबसे बड़ा काम जो इन औरतों का है, वह है सुबह को टोलियों में बंटकर जंगल में जाना तथा चीड़ के वृक्षों की ड़ालियों को काटकर एक बड़ी टोकरी में भरना और फिर वापस घर आना । सब मेहनत करते हैं, सब संतुष्ट हैं । आज से दस-बारह वर्ष पूर्व मैं इसी एक झोंपड़ी में रहता था । नसीमा की झोंपड़ी के बिल्कुल सामने ! यह मत समझिए, मैं इसी गांव का रहने वाला हूं । दरअसल मेरा गांव यहां से पांच मील दूर है । चूँकि मुझे नौकरी करने का शौक था, इसलिए बहुत दौड़-धूप करने के बाद उस समय मुझे यहां के वनों का गार्ड बनाया गया । उस समय मैं जवान था और अभी किसी स्त्री के स्नेह से वंचित था । वन-विभाग की तरफ से मुझे यह आदेश मिला था कि गांव की जो औरतें वन से लकड़ी काटकर चुराती हैं, उनको पकड़कर पुलिस के हवाले करना । जितना मुझसे हो सकता था, मैं उनके इस आदेश का पालन करता । चूँकि वन में औरतों की ऐसी कई टोलियां आकर लकड़ी चुराती थीं, उन सबको पकड़ना मेरे काबु के बाहर था ।

एक दिन सुबह-सवेरे जब मैं वन का निरीक्षण करने गया तो वहां पहले ही औरतों की एक बड़ी टोली आ पहुँची थी । मुझे देखकर वे सब पहले तो घबरा गयीं । जब मैं उनको समझाने लगा कि ऐसा मत करो तो उनमें से एक मुझपर एकदम झपट पड़ी । फिर दूसरों की सहायता से उसने मुझे एक बड़े पेड़ के सहारे रस्सी से बांध लिया । इसके बाद उन्होंने अपना काम सावधानी से किया । मैं फटी-फटी आंखों से उनकी ओर देखता

रहा और वे अपने ज़ोरदार कहकहे से मेरा अपमान करने लगी। लगभग एक घण्टा तक इसी प्रकार रहते मैं थक गया। इस बीच हर औरत लकड़ियां काटकर तथा उससे भरा हुआ एक बड़ा टोकरा सिर पर उठाए चली गयी। यह देख मैं घबरा गया और रस्सी को तोड़ने के लिए हाथ-पांव मारता रहा। मेरी आंखों में आंसू आ गये। सोचता था कि कहीं मैं इस जंगल में इसी तरह अकेला ही न रह जाऊं! इतने में न जाने यह क्या हो गया! पीछे से किसी ने रस्सी की गांठ खोल दी और मैं आज़ाद हो गया। जब मैंने पीछे की ओर देखा तो आवाक् होकर रह गया। यह नसीमा थीं···सुन्दर! स्वस्थ! गठीली देह! घुंघराले-सजे केश और उस पर 'पूच' पहनी हुई। फूले-फूले गालों पर लाली भरी चमक, वक्ष का आकर्षक उभार। वह मेरे सामने बैठ गई। फिर धीरे-धीरे बाहें उठाकर उसने अपने मरमरी हाथों से मेरे आंसू पोंछ दिये। मैंने उसको कुछ नहीं कहा केवल सब कुछ देखता रहा। न जाने मेरे दिल में उसके प्रति श्रद्धा क्यों जग गयी। अगले क्षण मैं उसकी ओर बढ़ने लगा। वह मेरे और करीब आ गयी। मैं श्रद्धावश अपने होंठ उसके माथे पर लगाने ही वाला था कि उसने सिर को एक झटका देकर अपने लाल अनार से गाल मेरे होंटों के सामने कर दिये। किन्तु मैंने अपना मुंह एक तरफ किया। कहा—'कैसी पगली हो तुम। इतना भी नहीं जानती कि जब भाई बहन को चूमता है तो उसके माथे को ही चूमता है।'—यह सुनकर न जाने उसने मेरी ओर घूरकर क्यों देखा और वहां से चल दी और दूर से दिखाई देने वाली औरतों की उस टोली में सम्मिलित हो गयी जिसने मुझे पेड़ के सहारे रस्सी से बांध दिया था।

तो साहब, उस समय मैं अपने आपको पराजित समझने लगा।

मुझे फिर रोज़ उसके साथ मिलना-जुलना हुआ—जंगल में, रास्ते में और कभी-कभी नाले पर। वह अभी कुँवारी थी और इस बात का पता मुझे उस समय हो गया जब मैं उसकी झोंपड़ी के सामने रहने लगा। इस तरह उसका मेरे ड़ेरे पर आना नित्य-नियम बन गया। वह हर समय मेरा उत्साह बढ़ाती और जब कभी मैं अपने कमरे में अकेला होता तो वह अचानक मेरे सामने आ धमक पड़ती और अपनी प्यारी-प्यारी बातों

से मेरी उस झोंपड़ी में कहकहे बिखेर देती। मेरा इस तरह ख़याल रखती मानो मैं उसका कोई अपना था—खाना वक्त पर खाया, साफ कपड़े पहन लिए आदि। और कभी-कभी वह मेरा खाना भी खुद पकाती थी और शाम को सोने तक वह मेरे कमरे में अकेली रहती। इस बीच वह मेरे साथ अजीब सी हरकतें करती कि मैं पानी-पानी हो जाता। यह मत समझिए साहब, मैं नहीं जानता था कि वह क्या चाहती थी। मुझे तो उसका अच्छा-खासा ज्ञान था। किन्तु मेरे दिल में उसके प्रति श्रद्धा हो गयी थी कि मैं उसको छूना तक नहीं चाहता था।

इसी तरह एक वर्ष बीत गया। एक दिन वह मेरे पास आयी और सच मानिए, उस समय मैं उसको पहचान ही न सका। उसका चेहरा नीला पड़ चुका था। सहमी-सहमी सी लग रही थी वह। मैंने उससे एकदम पूछा—'क्यों। क्या बात है?'

'कुछ नहीं'—उसका उत्तर था।

'झूठ कहती हो। कोई-न-कोई बात तो ज़रूर है। तुम्हारा चेहरा कहता है।'—मैंने कहा।

उसने कुछ नहीं कहा। केवल 'पूच' को सिर पर अच्छी तरह बांध लिया। फिर याचक नज़रों से मेरी ओर देखने लगी।

मेरी समझ में भी कुछ नहीं आया कि आज वह इतनी दुखी क्यों है? कोई-न-कोई बात तो ज़रूर है आज! अगले दिन जब मैं अपनी ड्यूटी पर गया तो रास्ते में उसका पिता सलामजू मिला। और बातों के अलावा उसने मुझे बताया कि नसीमा की शादी इसी सप्ताह होने वाली है। सच मानिए, यह शुभ-समाचार सुनकर मैं बहुत खुश हुआ। मैं उसको शुभ-कामना कहकर चल दिया। रास्ते में सोचा कि चलो ठीक हुआ नसीमा की शादी होगी, वह माँ बनेगी, बच्चे होंगे और न जाने क्या-क्या···

साहब, ऐसा सब कुछ हुआ। पूरे समय पर। किन्तु अपने-आपसे सोचता हूं कि ज़माना ने यह कौन-सी करवट ले ली। यदि उसकी शादी खाते-पीते घराने में हुई तो मेरे ऊपर ये कुंवारेपन के साये क्यों मंडरा रहे हैं। क्यों उसने मेरे नपुसंग होने की यह झूठी अफवाह उड़ा दी जो आग की तरह मेरे गांव तक भड़क उठी। मुझे कोई पूछता ही नहीं

जैसे उसकी बात शत-प्रतिशत सत्य है। और यही एक सद्मा है जिससे उस समय मुझे इस बात का एहसास हुआ कि कोई कितना ही पवित्र क्यों न हो, किसी-न-किसी दिन उसके दामन पर दुश्चरित्र के धब्बे लगते ही हैं, उसका ज़ाहिरी तौर से सुन्दर होने पर उसके अन्दर की बदसूरती कभी छिप नहीं सकती तथा वह कितना ही उदार क्यों न हो, वह किसी भी समय अपनी नीचता का परिणाम दे सकता है। और इस प्रकार के एहसास से मेरे सीने में आग सी भड़क उठी जिससे उस समय मैं यह जान नहीं पाया कि इसका अन्त क्या हो।

हां, इधर जब वह अपने पति रमजान के साथ 'फिर साल' के सिलसिले में सात दिनों के लिए मायका आयी तो उसको मैंने शादी के बाद पहली बार देखा। दिल नहीं चाहता था उसके देखने को। किन्तु समझ में यह नहीं आ रहा था कि मेरे अन्तर में आज उसके प्रति इतनी तड़प क्यों थीं। उसको देखकर मुझे लगा कि स्वर्गलोक से कोई अप्सरा पृथ्वी पर अवतरित हुई है। 'कितनी भली है नसीमा!—मैंने कहा मन-ही-मन। मैं उसकी ओर तन्मय हो गया। जैसे मैं दूसरी ही दुनिया में पहुंच गया। उस दुनिया में जहां अप्सराएँ रहती हैं। 'नसीमा अप्सरा है, ···सच्च!—मैंने अपने-आपसे कहा। काश! उस दिन मैंने नसीमा के गाल पर ही···ऊंह, यह तो मैं ठीक नहीं सोच रहा हूँ!

न जाने मुझे क्या हो गया साहब! नसीमा की छवि मेरे मन में एकदम क्यों अंकित हुई! सच मानिए, अब तो मैं नसीमा की गुणों वाली किसी अन्य की कल्पना नहीं करने लगा। यदि अब कोई मेरे आंखों में थीं तो वह थी नसीमा ही···नसीमा कितनी सुन्दर है···नसीमा की कैसी सुरीली आवाज़ है···नसीमा के गाल कैसे अनार जैसे लाल-लाल हैं··· उसके वक्ष का कितना उभार है···और मैं सोचता कि क्या अब मुझे उसके साथ पहले की तरह मिलने-जुलने का अवसर मिल सकेगा! खुदा करे कि अब वह यही रमजान के साथ रहे। खैर, सात दिन तो उसको यहीं रहने हैं। फिर देखा जाएगा।

मेरी झोंपड़ी के ठीक सामने नसीमा रमजान के साथ दिख रही थीं। इस समय वह मेरी ओर नहीं देख रही थी, जैसे पहचानती ही नहीं। झोंपड़ी

के उस कमरे में जब रमजान ने शाम का खाना खाया तो उसके लिए उसी कमरे में नया बिस्तर लगाया गया। उस पर दो नये कपर-चादर! आषाढ़ की गर्मी के दिन थे! इसलिए कमरे की खिड़कियां खुली थीं। मैं अपनी खिड़की में बहुत अन्दर से रमजान को देख रहा था। उसने बिस्तर पर लेटने से पूर्व कपड़े उतारे। इतने में नसीमा ने कमरे में प्रवेश किया। दरवाज़े को सिकड़ी लगाने के बाद वह पहले क्षण के लिए रमजान के पास बैठ गई। इसके बाद रमजान ने उसको दोनों हाथों से गले लगाया और फिर अपने होंठ उसके गाल पर···इसके बाद बिजली गुल हो गई।

यह देख मैं ठिठक-सा गया। शरीर में मधुर सिहरन सुरसुराई। मैं झट वहां से उठ गया! काश! मेरे साथ भी ऐसा हो सकता! संभव नहीं! क्यों नहीं! क्या मैं नसीमा से इसी तरह प्रेम नहीं कर सकता था! कौन-सी कमी है मुझमें! सब कुछ तो है! तो क्या मैं नसीमा से प्यार करने लगा हूँ···सच्च! मुझे तो ऐसा ही लग रहा है! मगर नहीं, मैंने उसके माथे को चूमा है! तो क्या हुआ! दरअसल मैंने वह मौका ही अपने आप गंवा दिया। अरी नसीमा! अब एक बार कह दो न, मैं तुमसे ···। अब मैं ना नहीं कहूँगा। कभी वह दिन आयेगा? ज़रूर आयेगा।··· मैं सोचने लगा।

उस रात एक पल भी मुझे नींद नहीं आयी। मैं तरह-तरह के खयालों में खो गया। यह जानकारी भी कि नसीमा अब विवाहित है, तो भी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरे दिल में उसके प्रति इतनी चाह क्यों तीव्र होने लगी। मैं नसीमा के लिए बुरी तरह तरसने लगा, उसको पाने के लिए। रात के चार बज गये। नसीमा के लिए मैं आतुर होने लगा। इतने में कमरे में बिजली का प्रकाश फैल गया। जब मैंने उस ओर देखा तो रमजान और नसीमा फिर उसी तरह···बाद में नसीमा ने रमजान से अपनी बांह ज़बरदस्ती छुड़ा लीं और कमरे के मध्य में आकर 'फिरन' पहना तथा सिर पर स्कार्प बांधा। रमजान कपर-चादर ओढ़कर सो गया और नसीमा कमरे के बाहर आयी। मैंने सोचा कि अब वह नाली पर हाथ-मुंह धोने जाएगी। क्यों न मैं इस वक्त उससे

मिलूं ! कौन देखेगा हमें ? हां, यही तो उपयुक्त समय है। अभी तो अन्धेरा है। शायद वह मेरा इस तरह मिलना ज़रूर पसंद करेंगी।

मैंने झट चप्पल पहनीं और झोंपड़ी से निकलकर नाले की ओर चल दिया। हां, मेरा अनुमान सही था। नसीमा वहां हाथ-मुंह धो रही थीं। मैं दबते कदमों उसके समीप पहुंच गया। शायद उसने मेरे चलने की आहट न सुनी हो, वह मजे में एक बड़े गोलाकार पत्थर में बैठी मुंह-हाथ पर 'पूच' का पल्ला फेर रही थी। ज्यों ही मैं उसके पास पहुंचा, वह चौंक गयी। वह झट इस गोलाकार पत्थर पर से उतरकर मेरे पास आ गयी। मैंने उसको कुछ नहीं कहा, केवल उसकी ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगा। फिर उसके कन्धे पर हाथ रखा और अगले ही क्षण जब मैं अपने होंठ उसके लाल-लाल गालों पर रखने वाला था कि मेरी समझ में यह नहीं आया ऐसा क्यों ? वह एक बारगी घबरा गई और सिर को झटका देकर अपना माथा मेरे होंठों के पास बढ़ाया और साथ ही मेरे उस वाक्य को दोहराकर कहा—'क्यों जी, इतने में सब कुछ भूल गये। यदि इस तरह पहले हुआ होता तो मैं भी समझती मर्द हैं ! खैर, इस समय याद रखो कि यदि बहन को चूमना है तो माथ पर से ही···।'

मैं निढ़ाल-सा होकर रह गया शरीर का सारा खून पसीना बनकर मसामों से बूंद-बूंद निकल गया।

हां साहब, इस समय मैंने पराजय स्वीकार की।

सोचता हूँ कि समय किस तरह बदलता रहता है—नाले के उस उछलते हुए पानी के बहाव की तरह ! आज जो होता है, उसको कल के होने वाले से क्या संबंध ! और जो कल हो, उसका किसको पता। इसी ने मुझे पागल बना दिया है, वरना मैं पागल नहीं हूँ।

प्रेमगीत

कुँवर कृष्णरावदान